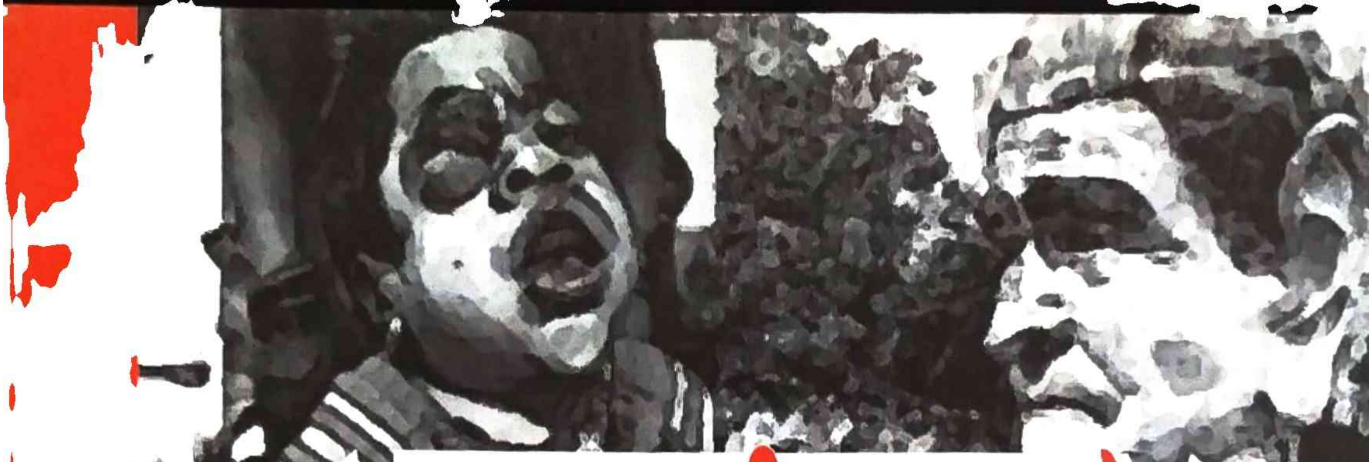

डालर की चाल ने, जहर घोला भोपाल में

वैश्वीकरण के मुहाने पर सरकार और कॉरपोरेट पूंजी की सांठगांठ की कहानी

डॉ. अनिल सद्गोपाल

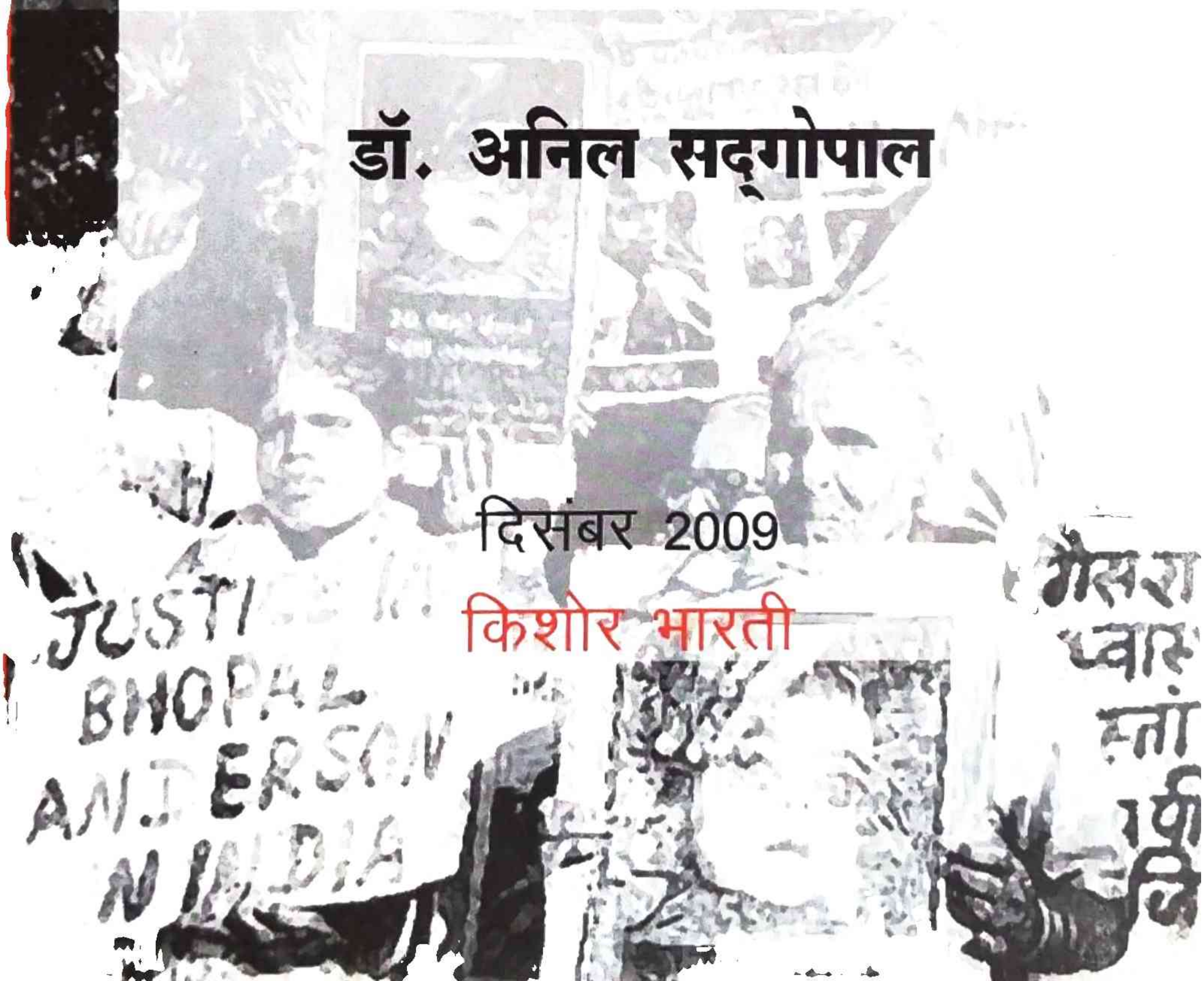

दिसंबर 2009

किशोर भारती

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन द्वारा 15–16 अप्रैल, 1989 को आयोजित "भोपाल समझौते पर राष्ट्रीय सम्मेलन" पर न्यायमूर्ति व्ही. आर. कृष्णा अय्यर से प्राप्त संदेश का सार

(मूल अंग्रेजी से अनूदित)

"भोपाशिमा [भोपाल+हिरोशिमा], या भोपाल त्रासदी, एक ऐसी विभीषिका है, जिसके कई मायने हैं। . . . भोपाल मुकदमा केंद्रीय सरकार ने जिस ढंग से लड़ा वह अब तक का सबसे बुरा कानूनी हादसा था . . . यह समझौता भारत सरकार द्वारा यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन के सामने एक घिनौना आत्मसमर्पण है, जिसमें अदालत ने चाहे एक भले पर गैर–जानकार बिचौलिए मात्र की भूमिका अदा की है और एक अन्यायपूर्ण आपसी लेन–देन पर अपनी मोहर लगा दी है। क्या भारतीय जीवन इतना सस्ता है, भारतीय न्याय इतना गया–गुजरा है और भारतीय कानून इतना कमजोर है कि जहरीली गैसों का धंधा करनेवाली एक अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी हमारे गणतंत्र के कर्ताधर्ताओं को ब्लैकमेल करके अपने सामने झुका सकती है? कोर्ट का यह आदेश जिसका चेहरा भावशून्य है, भले ही उसकी मंशा सही रही हो, उसने बिलावजह न्यायपालिका को बलि का बकरा और मखौल बना दिया है।"

"मैं . . . इस उंची अदालत से अनुरोध भी करता हूं कि वह अपने आदेश पर पुनर्विचार करे। . . . कम–से–कम इस ऐतिहासिक मुकदमे के जरिए यह घोषणा तो की जाए कि जब बहुराष्ट्रीय कंपनियां तीसरी दुनिया और खासकर तीसरी दुनिया के अंदर बसी हुई गरीब जनता की चौथी दुनिया का इस्तेमाल असंख्य पीड़ितों के हित की चिंता किए बगैर अपनी औद्योगिक विनाश लीला और अंधाधुंध मुनाफाखोरी के मृत्यु तांडव के लिए करती हैं, तब उन पर संपूर्ण एवं निःशर्त जवाबदेही का कानून लागू हो। भोपाल में मरे और आज मरने की ओर बढ़ रहे लोगों के रक्तपात, पीड़ा, आंसू एवं आनुवांशिक अपंगता लेकर पैदा होनेवाली संतान को अदालत की इतनी हमदर्दी तो चाहिए ही थी कि 'भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन' सरीखे प्रतिनिधि संगठनों के माध्यम से कम–से–कम उनकी सुनवाई तो दोबारा हो सके। सुप्रीम कोर्ट जनतांत्रिक अधिकारों की हिफ़ाजत की लड़ाई का आखिरी किला है। अतः मेहरबानी करके . . . अपने फैसले पर इस हद तक तो पुनर्विचार कीजिए कि भोपाशिमा की शहादत से संपूर्ण एवं निःशर्त जवाबदेही के कानून की एक सृजनात्मक घोषणा निकले और भारतीय जीवन के हक को खतरा पहुंचानेवाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खिलाफ एक चेतावनी जारी की जा सके। भारतीय न्याय व्यवस्था का एक विनम्र पक्षधर होने के नाते मैं कार्बाइड के मालिकों को अपराधिक जवाबदेही से पूर्णतः बरी कर दिए जाने पर हतप्रभ हूं जबकि कोर्ट के इस आदेश के क्षेत्राधिकार और न्यायशीलता स्वयं विडंबना एवं रहस्य में उलझी हुई पहेली बन गए हैं।"

"मैं कामना करता हूं कि यह सम्मेलन अदाल[illegible] लोगों की वेदना के प्रति खोलने में एक रचनात्मक भूमिका अदा करेगा जिनके [illegible] अभी तक दंडित न हुए अपराध के कारण बह रहे हैं।"

– कैंप : केरल [illegible] / महात्मा गांधी मार्ग, कोचीन, केरल 682 011

डालर की चाल ने, जहर घोला भोपाल में

वैश्वीकरण के मुहाने पर
सरकार और कॉरपोरेट पूंजी की सांठगांठ की कहानी

डॉ. अनिल सद्‌गोपाल

किशोर भारती
भोपाल, मध्य प्रदेश

डालर की चाल ने, जहर घोला भोपाल में

वैश्वीकरण के मुहाने पर
सरकार और कॉरपोरेट पूंजी की सांठगांठ की कहानी

आवरण

कनक, भोपाल

लेखक

अनिल सद्गोपाल

प्रकाशन एवं वितरण

किशोर भारती
ई–8/29, सहकार नगर,
भोपाल 462 039, मध्य प्रदेश
फोन : (0755) 2560438
ईमेल : kishorebharati.bhopal@gmail.com

प्रथम संस्करण : दिसंबर 2009 (1,000 प्रतियां)
पुनर्मुद्रण (संशोधित) : अक्तूबर 2012 (2,000 प्रतियां)

मुद्रण

राजकमल ऑफसेट प्रिंटर्स,
15–सी, सेक्टर–जी, जे. के. रोड,
गोविंदपुरा, भोपाल, 462 022

सहयोग राशि

पंद्रह रुपए मात्र

इस पुस्तिका में छपी किसी भी सामग्री का उपयोग, उद्धरित एवं पुनर्प्रकाशन करने की पूरी छूट है। अपेक्षा केवल यह है कि ऐसा करते समय सामग्री के स्रोत का पृष्ठ संख्या सहित पूरा जिक्र किया जाए।

कहां क्या है?

क्र.	विवरण	पृष्ठ सं.
	भूमिका	1
	खंड एक :	
	'घिरे हैं हम सवाल से, हमें जवाब चाहिए'	2
	खंड दो :	
	सुप्रीम कोर्ट कटघरे में – पूंजीवादी अर्थतंत्र के सामने आत्मसमर्पण	33
	खंड तीन :	
	वैश्वीकरण और भोपाल के मायने	54
	उपसंहार : भोपाल से कोपनहेगन तक	56

शुरूआत की सुबह

छोटी–छोटी बातें,
हजारों दुख गाथाएं।
समझने में सीधी और आसान,
कहीं सिर्फ एक या दो मामूली–सी पहचान।
धूल कण,
एक पेड़ का गिरना,
कहीं से थोड़ा–सा रिसाव,
चूल्हे का ऊष्म धुआं।

हमारी आवाज़ शर्मिंदा होकर
छुप जाती है मशीनों के बाज़ार में।
सिर्फ वेदनाएं,
दुख की गाथाएं,
चलती रहेंगी अनंत काल तक

या

हम उठ खड़े होंगे
अंतिम क्षणों में?
अंत नहीं होगा
जहां अंत होना था,
वहीं शुरूआत की सुबह खिल उठेगी।

– शहीद शंकर गुहा नियोगी
जुलाई 1991

शहीद शंकर गुहा नियोगी द्वारा पर्यावरण और विकास के रिश्ते पर जनवादी दृष्टिकोण से लिखे गए उनके अंतिम आलेख 'हमारा पर्यावरण' के अंत में लिखी गई उनकी अंतिम कविता।

(स्रोत -- लोक साहित्य परिषद, छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा)

भूमिका

भोपाल गैस कांड की 25वीं बरसी पर इस पुस्तिका को लिखने की मुख्य प्रेरणा यह है कि यूनियन कार्बाइड की जहरीली गैस के शिकार हुए लाखों भोपालवासियों की अपने हक की लड़ाई आज भी ज़िंदा है। गैस पीड़ित जनता अपने तजुर्बे से दो बातें समझ गई है। पहली, न्याय के मायने केवल इलाज, पुनर्वास और मुआवजा नहीं है वरन् जब तक हत्यारी यूनियन कार्बाइड (और अब डाऊ केमिकल) को उसके द्वारा किए गए नरसंहार के लिए पूरा दंड नहीं मिल जाता तब तक न्याय अधूरा है। इस पुस्तिका में स्थापित किया गया है कि न्यायपूर्ण इलाज, पुनर्वास और मुआवजा भी तभी मिल पाएगा जब यूनियन कार्बाइड और उसकी नई मालिक डाऊ केमिकल को उनके पास जहरीली गैसों के बारे में उपलब्ध जानकारी सार्वजनिक करने के लिए मजबूर किया जाएगा। दूसरी बात गैस पीड़ित जनता समझ गई है कि यह मकसद पूरा नहीं होने की मुख्य वजह **भारत की राजसत्ता और वैश्विक पूंजी के बीच की सांठगांठ** है। इसीलिए भोपाल की लड़ाई को दुनियाभर में पूंजीवादी अर्थतंत्र और साम्राज्यवाद के खिलाफ चल रही लड़ाई से जोड़ना होगा।

भोपाल हादसे में तीन और हादसे छिपे हुए हैं। पहला, भारत में मौजूद विशाल वैज्ञानिक तंत्र और बड़ी तादाद में काबिल वैज्ञानिक होने के बावजूद हम न तो यूनियन कार्बाइड के खिलाफ वैज्ञानिक सबूत बटोर पाए और न ही गैस पीड़ितों के इलाज के लिए एक पुख्ता विषविज्ञानी नजरिया विकसित कर पाए। दूसरा, यूनियन कार्बाइड और सरकार दोनों के द्वारा जानकारी छिपाना या भ्रामक जानकारी देना एक बड़ा हादसा रहा है। तीसरा, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की न्यायिक प्रणाली का है जो कॉरपोरेट पूंजी के खिलाफ कानूनी जवाबदेही एवं क्षतिपूर्ति हर्जाने के साथ दंडात्मक हर्जाने का सिद्धांत स्थापित करने में असफल रही।

मैं दिसंबर 1984 से लेकर अगले चार साल तक गैस पीड़ित आंदोलन का हिस्सा रहा। **यह पुस्तिका उन सभी संस्थाओं और संगठनों, खासकर लड़ाई की अगली कतार में खड़ी हजारों जुझारू गैस पीड़ित महिलाओं, को समर्पित है जो 25 साल तक इस लड़ाई को जिंदा रख सके हैं। इन सबको मेरा क्रांतिकारी सलाम!**

'घिरे हैं हम सवाल से, हमें जवाब चाहिए'

पच्चीस साल पहले 2–3 दिसंबर 1984 की दरम्यानी रात को मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में हुए दुनिया के इतिहास के सबसे बड़े औद्योगिक हादसे को आज याद करने की क्यों जरूरत है, इस सवाल से हम अपनी बात शुरू करेंगे। इसके पहले उस रात हुआ क्या, यह याद कर लें। उस रात भोपाल में खौफनाक हाहाकार मचा। यूनियन कार्बाइड के कीटनाशक दवा बनानेवाले, घनी रिहायशी बस्तियों से घिरे, कारखाने के टैंक न. 610 ने लगभग 30 टन जहरीली गैस (या गैसें) उगली जिसके चलते शहर के लोग कीड़े–मकोड़ों की तरह मरने लगे। सारे शहर में दहशत और छटपटाहट का माहौल बन गया। रातोंरात भोपाल मौत के साये में डूब गया। गैस 2 दिसंबर की रात 11:30 बजे निकलनी शुरू हो चुकी थी लेकिन अगली सुबह तक यूनियन कार्बाइड या सरकार के द्वारा कोई भी जानकारी, चेतावनी या सलाह जनता को नहीं दी गई। जब हजारों लोग उलटियां करते और खांसते हुए, सांस फूलने एवं आंखों में सूजन व पानी बहने की शिकायतें लेकर सरकारी अस्पतालों (जैसे हमीदिया, सुल्तानिया ज़नाना और 1250 अस्पताल) में पहुंचने लगे तो हमीदिया अस्पताल में ड्यूटी पर मौजूद डॉक्टर ने यूनियन कार्बाइड के मेडिकल अफ़सर को फ़ोन लगाकर गैस के नाम और उसके कारण शरीर पर हो रहे असर को खत्म करने के लिए दवा (एंटीडोट) के बारे में पूछताछ की। जवाब में कार्बाइड के मेडिकल अफ़सर ने बताया कि गैस जहरीली नहीं है, बस लोगों को आंखों पर गीला तौलिया भर लपेटने को कह दिया जाए!

लेकिन हकीकत तो कुछ और ही थी। गैस के कारण अगले 2–3 दिनों में ही सैंकड़ों लोग (और अब तक लगभग 20,000 लोग) मौत के हवाले हुए, पांच लाख लोग ज़िंदगी भर के लिए नाना प्रकार की बीमारियों के शिकार हो गए और कम–से–कम एक लाख लोग अपने रोजगारों को जारी रखने लायक नहीं रहे। शहर की पूरी अर्थव्यवस्था एक लंबे अर्से के लिए अस्त–व्यस्त हो गई। बात केवल भोपाल की ही नहीं थी। उस रात शादियों का मुहूर्त था। भोपाल के आसपास के गांवों और शहरों से – विदिशा, रायसेन, सिहोर, होशंगाबाद और यहां तक कि दूर के जबलपुर व

इंदौर से भी – हजारों बाराती व रिश्तेदार शादियों के खुशनुमा माहौल में शामिल थे। वे भी यूनियन कार्बाइड के खौफ के शिकार बने।

एक माह के भीतर ही यह सवाल उठने लगा कि भोपाल हादसे के सबक क्या हैं। आखिरकार, भारत में मानव जीवन को नुकसान पहुंचानेवाले जहरीले रसायनों से लैस कीटनाशक दवाइयों को बनानेवाला यह कारखाना लगाने की जरूरत क्यों पड़ी? क्या इसके बगैर भारत में खेती नहीं हो सकती थी? हालांकि यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड भारत में एक पंजीकृत कंपनी थी पर यह जगजाहिर था कि इसके पीछे अमरीका की दुनिया भर में फैली हुई ताकतवर बहुराष्ट्रीय यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन की पूंजी लगी हुई है – दिखाने को भोपाल के कारखाने को चलानेवाली कंपनी के बोर्ड में भारतीय उद्योगपति थे लेकिन इस परदे के पीछे कारखाने की प्रौद्योगिकी, उत्पादन प्रक्रिया और प्रबंधन के सभी फैसलों की नकेल बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेट पूंजी के हाथ में है। इसलिए सवाल यह भी उठा कि इस बहुराष्ट्रीय कंपनी को ऐसा घातक (और असुरक्षित) कारखाना लगाने की अनुमति केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार ने कैसे दे दी, वह भी शहर की सघन बस्तियों के एकदम बगल में? क्या ऐसे कारखानों की रासायनिक प्रक्रियाओं, उपकरणों और सुरक्षा प्रणालियों की पूर्व जांच–पड़ताल और उसके बाद लगातार निगरानी रखने के लिए गठित सरकारी तंत्र काम नहीं कर रहा था? यूनियन कार्बाइड ने कारखाने में इस्तेमाल हो रहे जहरीले रसायनों और उनसे निकल सकनेवाली गैसों व उनके द्वारा इंसानों पर होनेवाले असरों एवं इलाज के बारे में वैज्ञानिक जानकारी सरकार को क्यों नहीं दी? क्या इस जानकारी को आसपास की बस्तियों में रहनेवाले लोगों को दिए बगैर ऐसा हत्यारा कारखाना खोलने की इजाज़त दी जा सकती है? ऐसे दर्जनों और सवाल दुनिया भर की आम जनता को झकझोर रहे थे।

कहीं ऐसा तो नहीं कि भारत सरकार और कॉरपोरेट पूंजी के बीच कोई सांठगांठ है? क्या यही कारण है कि यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन के ताकतवर अमरीकी अध्यक्ष वारेन एंडरसन को हादसे के तुरंत बाद भोपाल में गिरफ्तार करने के बावजूद फौरन रिहा कर दिया गया और आज तक उनके खिलाफ अपराधिक कानूनी प्रक्रिया का महज एक नाटक खेला गया है? जनता लगातार पूछती रही है कि जिस केंद्रीय सरकार ने उनके इलाज, पुनर्वास और यूनियन कार्बाइड से न्यायोचित मुआवजा

दिलवाने की पूरी जवाबदेही संसद में एक विशेष कानून बनवाकर अपने हाथ में ले ली थी, वह इस मामले में एक ढुलमुल रवैय्या क्यों अपनाए हुए है? क्या कारण है कि लाखों गैस पीड़ितों को आज तक वैज्ञानिक इलाज नहीं मिल पाया, उनका पुनर्वास नहीं हुआ और उनको न्यायोचित मुआवजे से वंचित किया गया? यह भी पूछा जा रहा है कि इतने बड़े कांड के बाद हत्यारी बहुराष्ट्रीय यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन और बाद में उसको खरीदनेवाली डाऊ केमिकल कंपनी बच कैसे गई। सितंबर 1986 में भारत सरकार ने भोपाल की अदालत में यूनियन कार्बाइड के खिलाफ 330 करोड़ डालर यानी 50 अरब रुपए* (दंडात्मक हर्जाने को छोड़कर) के मुआवजे का दावा ठोका था और वही सरकार फरवरी 1989 में सुप्रीम कोर्ट में महज 47 करोड़ डालर यानी 715 करोड़ रुपए' के मुआवजे का समझौता करने के लिए कैसे तैयार हो गई? अपेक्षा तो यह थी कि यदि सरकार जनता के पक्ष में इस लड़ाई को आगे बढ़ाती तो यूनियन कार्बाइड दुनिया के नक्शे से हमेशा के लिए मिट जाती और डाऊ केमिकल द्वारा उसकी खरीदारी का सवाल ही नहीं उठता। ऐसा क्यों नहीं हुआ? आज भी भारत में इसी प्रकार के जहरीले रसायनों को बनानेवाले कारखाने खुल रहे हैं, आए दिन उनमें से जहरीली गैसें रिसने की खबरें आती हैं, कारखाने के कर्मचारी और आसपास की बस्तियों के लोग बीमार पड़ते हैं, मरते हैं। लेकिन पच्चीस साल पहले यूनियन कार्बाइड के तांडव नृत्य से भारत की राजनीति और अर्थव्यवस्था ने कोई भी सबक सीखा हो, इसके कोई सबूत उभरकर नहीं आए हैं। क्या पूंजीवादी व्यवस्था और उसमें निहित बेलगाम मुनाफाखोरी के बारे में कोई पुनर्विचार हो रहा है या अब भारत खुद पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के रास्ते पर चलने लगा है? इसीलिए आज न केवल भोपाल और भारत के विभिन्न अंचलों में बल्कि दुनियाभर में समाज के जागरूक और प्रगतिशील तबके इस प्रकार के सवालों को वैश्वीकृत नवउदारवादी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नए सिरे से उठा रहे हैं। इसी खास नजरिए से हम भोपाल की कहानी को एक बार फिर याद करेंगे और यहां दर्ज करेंगे। कवि शलभ श्रीराम सिंह की भाषा में –

---

*फरवरी 1989 की विनिमय दर के अनुसार, एक अमरीकी डालर 15.2 भारतीय रुपए के बराबर था।

"घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिए!
जवाब दर सवाल है कि इंकलाब चाहिए!"

शुरूआती यादें

जब यह हादसा घटा उस समय मैं होशंगाबाद जिले (मध्य प्रदेश) के पूर्वी छोर पर स्थित किशोर भारती संस्था में ग्रामीण विकास और शिक्षा का काम कर रहा था। भोपाल हादसे की खबर मिलते ही किशोर भारती समूह की ओर से मुझे और सतीनाथ षड़ंगी उर्फ सत्यू को प्रतिनिधि बनाकर भेजने का फैसला हुआ। जब हम दोनों 4 दिसंबर 1984 की सुबह भोपाल पहुंचे तो पाया कि हमारे बहुत सारे स्थानीय साथी पहले से ही गैस पीड़ित बस्तियों में राहत के काम में जुटे हुए थे। मुझे याद है पूरा रेलवे स्टेशन तो ऐसे चमचमा रहा था जैसे कि वहां एक दिन पहले कोई हादसा घटा ही न हो। हादसे की एक ही निशानी बची थी – स्टेशन पर पूरा सन्नाटा छाया हुआ था। पूछने पर पता चला कि 2–3 दिसंबर की रात को सभी प्लेटफार्मों पर लाशें बिछी हुई थीं जिनमें रेलवे के कर्मचारी भी थे। कार्बाइड के कारखाने की स्टेशन से सीधी दूरी बमुश्किल एक कि.मी. थी। आधी रात को स्टेशन जहरीली गैस से घिर गया। उसी समय दिल्ली से आनेवाली एक ट्रेन वहां आकर खड़ी ही हुई थी लेकिन एक सतर्क रेलवे अधिकारी ने हालात की नाजुकता को समझकर उस ट्रेन को तुरंत विदा करवा दिया अन्यथा ट्रेन के सभी यात्री वहीं मौत का शिकार हो जाते। स्टेशन पर उद्‌घोषणा करनेवाला एक कर्मचारी सबको सावधान करते–करते अपनी ड्यूटी निभाते हुए दम घुटने से शहीद हो गया। उस रात कारखाने के आसपास की बस्तियों के कच्चे मकानों और झुग्गियों में जहरीली गैस के घुसते ही सोते हुए हजारों लोग बेतहाशा इधर–उधर भागे। सड़कों पर भीड़ भाग रही थी लेकिन किसी को यह भी पता नहीं था कि वे जहरीली गैस की ओर भाग रहे हैं या दूसरी ओर। यूनियन कार्बाइड तो एक ही रट लगाए हुई थी, "गैस नुकसानदेह नहीं है।" जानकारी की कमी के बावजूद सरकारी डॉक्टरों ने मरीजों का जो इलाज किया और भोपाल के सभी सरकारी अस्पतालों ने सुविधाओं के अभाव में भी जो काम किया वह आज निजीकरण की अंधाधुंध मांग करनेवाली ताकतों के मुंह पर एक तमाचा है। उस सर्द

रात को भारत की राजनीति में भोपाल की सड़कों पर सूचना के अधिकार की लड़ाई का जन्म हुआ, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जब भोपाल की जनता त्रस्त थी तब कारखाने से 5–6 कि.मी. दूर श्यामला हिल्स पर स्थित मुख्यमंत्री निवास पर भी हलचल मची, हालांकि वहां जहरीली गैस का असर उस समय बहुत ज्यादा नहीं हुआ था। यह विडंबना है कि प्रशासन को इस हादसे का सामना करने के लिए नैतिक बल और निर्देश देने की जगह मुख्यमंत्री अपने परिवार समेत भागकर दूर कहीं सुरक्षित स्थान पर चले गए। लगभग यही हाल उनके मंत्रीमंडल के सदस्यों और शीर्ष नौकरशाहों का भी रहा जबकि उन सभी के सरकारी निवास कारखाने से काफी दूर ऐसे इलाकों में थे जहां जहरीली गैस अगर पहुंची भी तो रिस–रिसकर देर में और काफी कम मात्रा में। वैसे भी ये अभिजात और ताकतवर लोग आधुनिक पक्के मकानों में रहते थे जिनकी खिड़कियां सर्दी से बचने के कारण बंद थीं, जहरीली गैस वहां उस आसानी से नहीं घुस सकती थी जिस तरह वह कारखाने के आसपास की बस्तियों में बने कच्चे मकानों और झुग्गियों में घुस गई थी। शायद जहरीली गैस भी अमीर और गरीब के फर्क को पहचानती थी। लेकिन जहरीली गैस ने कारखाने के इर्दगिर्द बसी बस्तियों में रहनेवाले गरीब हिंदू और मुसलमानों के बीच कोई भेदभाव नहीं किया – सबको एक समान मारा या बीमार किया। शायद इसीलिए बाद में जब गैस पीड़ितों ने लामबंद होकर यूनियन कार्बाइड को सजा दिलवाने और इलाज व पुनर्वास का हक पाने के लिए आंदोलन किया तब हिंदू और मुसलमान कंधे–से–कंधा मिलाकर लड़ाई में शामिल हुए।

चाहे जनता के इलाज और तात्कालिक राहत के लिए मुख्यमंत्री और नौकरशाह उपलब्ध नहीं थे लेकिन उन्होंने उस रात एक पुख्ता इंतजाम कर दिया था जिसमें सरकारें हमेशा माहिर रही हैं। यह इंतजाम था उन सब सूचनाओं को छिपा लेने का जिनकी तनिक भी आंच बाद में सरकार को झुलसा सकती थी। इसका सबसे सटीक उदाहरण रेलवे स्टेशन और आसपास की बस्तियों व सड़कों पर बिछी हुई लाशों को सुबह होते ही गायब कर देना और बढ़िया धुलाई करके सब कुछ ऐसा बना देना कि कोई अंदाज़ भी न लगा सके कि चंदेक घंटों पहले ये स्टेशन व आसपास की सड़कें इस खौफनाक हादसे के गवाह थे। सहमे हुए लोगों से जब हमने लाशों के बारे में पूछा तो उन्होंने कांपती आवाज में इतना ही कहा कि सरकार ने उन्हें उठवा लिया।

इस काम को करने के लिए राज्य सरकार ने भारतीय फौज की मुस्तैदी का पूरा लाभ उठाया। अगली सुबह ट्रकों में मरे हुए पशुओं और इंसानों दोनों की ढुलाई होते तस्वीरें इस प्रकार छपीं, मानो कि दोनों में कोई फर्क ही नहीं था। इस सरकारी हबड़ा–दबड़ी में यह भी ध्यान नहीं रखा गया कि जिस इंसान की ढुलाई हो रही है, वह बेहोश है या मर चुका है। उन दिनों अनेक आंखों देखे बयान मीडिया ने दर्ज किए कि लोग दाह–संस्कार होने या दफनाने के ठीक पहले होश में आ गए और लाशों के ढेर में से घबड़ाकर भाग निकले। कुछ ऐसे बयान भी दर्ज हुए जहां पर ऐसे होश में आए लोगों ने रोंगटे खड़े करनेवाले अपने अनुभव खुद सुनाए।

पिछले पच्चीस सालों से भोपाल की सड़कों पर यह सवाल गूंज रहा है कि उस खौफनाक रात को और अगले 2–3 दिनों में कार्बाइड की जहरीली गैस से कितने लोग मरे। इस सवाल का सही जवाब न तो तब मिला, न आज मिल रहा है। हादसे के अगले दिन श्मशानघाटों में सामूहिक दाह–संस्कार और कब्रिस्तानों में सामूहिक दफनाने की दिल दहलानेवाली तस्वीरें दुनियाभर के मीडिया में प्रसारित हुईं। श्मशानघाटों में लकड़ी कम पड़ गई और कब्रिस्तानों में जगह के अभाव में एक–एक कब्र में अनेकों लाशें दफनाई गईं। भोपाल के कपड़ा व्यापारी संघ की ओर से दी गई एक खबर स्थानीय अखबारों में छपी कि उन्होंने सात हजार कफनों का कपड़ा दान में दिया। लेकिन सरकारी रिकॉर्डों में उस रात या आने वाले चंदेक दिनों में मरने वाले लोगों की तादाद सैकड़ों तक ही सीमित रही। खुद मैंने हादसे के पांच दिन बाद होशंगाबाद से भोपाल लौटते वक्त नर्मदा के रेलवे पुल के नीचे चार लाशें शर्ट–पतलून सहित तैरती हुई देखीं। इस पुल को मैं पिछले 14 सालों से देख रहा था लेकिन उसके नीचे नर्मदा नदी में इस तरह कपड़े समेत तैरती हुई लाशों का नजारा पहली और आखिरी बार देखा। नर्मदा के किनारे ढाबे पर ट्रकवालों से पूछताछ पर एक ही जवाब मिला – घुप्प अंधेरे में ट्रकों में भरकर लाशें फिकवाई गई हैं। उधर खबर थी कि भोपाल–दिल्ली रेल लाइन पर नजदीक के छोटे से स्टेशन सूखी सेवनियां के आसपास भी लाशों की ढुलाई होते देखा गया है। सच क्या है, जनता कभी जान नहीं पाई। लेकिन भोपाल हादसे की दो सच्चाइयों से कतई इंकार नहीं किया जा सकता। एक, सरकार – चाहे राज्य की हो या केंद्र की – दोनों पर से भोपाल की जनता का विश्वास तेजी से उठ गया था। दो, हादसे के बाद जो

घटनाचक्र शुरू हुआ उससे जनमानस में यह बात पैठ गई थी कि सरकार यूनियन कार्बाइड के बचाव के लिए काम कर रही है, न कि गैस पीड़ितों के हित में। इससे जो आक्रोश पैदा हुआ उसी ने गैस पीड़ितों के आंदोलन को जन्म दिया।

वैज्ञानिक सच का डर

6 दिसंबर 1984 को सबेरे खबर मिली कि तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने देश के शीर्ष वैज्ञानिक डॉ. एस. वरदराजन (महानिदेशक, सी.एस.आई.आर. यानी काउंसिल फॉर साइंटिफ़िक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च) को भोपाल हादसे के तमाम वैज्ञानिक पक्षों की जांच–पड़ताल के लिए नियुक्त किया है। यह भी पता चला कि वे उसी दिन वैज्ञानिकों के दल के साथ भोपाल पहुंच रहे हैं और उनका अंतरिम मुख्यालय सी.एस.आई.आर. की ही भोपाल स्थित रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी में होगा। यह इत्तफाक ही था कि मैं उस समय केंद्रीय सरकार के इस वैज्ञानिक शोध संस्थान के सलाहकार मंडल का मनोनीत सदस्य था। अतः मैं इस भरोसे से वहां पहुंचा कि ऐसे मौके पर जहरीली गैसों और उनके कारण शरीर पर हुए असरों की गुत्थी सुलझाने में वैज्ञानिक मदद देना मेरी नैतिक जिम्मेदारी बनती है। उस समय इतनी तो खबरें आने लगी थीं कि कार्बाइड कारखाने से निकली जहरीली गैस मिथाइल आइसोसायनेट ('मिक') हो सकती है जिसका इस्तेमाल कारखाने में कीटनाशक दवाई बनाने के लिए किया जाता रहा है। साथ में गैस में फ़ॉस्जीन और हाइड्रोजन सायनाइड होने की भी खबरें थीं। लेकिन इसके इंसान पर होनेवाले असरों के बारे में भोपाल की जनता ने जो भोगा और सरकारी डाक्टरों ने जो दर्ज किया उससे ज्यादा यूनियन कार्बाइड रंच मात्र भी बताने को तैयार नहीं दिख रही थी। मुझे पूरा भरोसा था कि डॉ. वरदराजन जैसे उच्च पदस्थ और काबिल रसायनिक इंजीनियर के नेतृत्व में केंद्रीय वैज्ञानिक दल के आने के बाद कार्बाइड की इस कॉरपोरेट चुप्पी को तोड़ना संभव हो जाएगा। लेकिन जो हुआ वह इस अपेक्षा के ठीक उलट था। जब मैंने अपने नाम की परची डॉ. वरदराजन के पास भेजी तो पहले तो कोई जवाब नहीं आया। मुझे हैरानी हुई चूंकि रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी के सलाहकार मंडल में मुझे उन्होंने ही मनोनीत किया था। बहुत दबाव डालने पर अंदर से संदेश आया कि वे किसी भी गैर–सरकारी व्यक्ति से नहीं मिलेंगे। मैं स्तब्ध था। मैंने विज्ञान में हमेशा खुले संवाद,

पारदर्शिता और लोकतांत्रिक रिश्तों का प्रशिक्षण पाया था। मुझे क्या मालूम था कि यह शुरूआत है भोपाल की दूसरी त्रासदी की जिसमें सरकारी वैज्ञानिक तंत्र जनहित को ताक पर रखकर बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेट गोपनीयता का साथ देगा। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि मेरी आंखों के सामने वैज्ञानिक जानकारी को छुपाने और विकृत करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया की नींव डाली जा रही है।

दो दिन बाद डॉ. वरदराजन की प्रेसवार्ता हुई जिसमें उन्होंने कारखाने की उत्पादन प्रणाली, रासायनिक प्रक्रियाओं और जहरीली गैस के रिसने के कारणों का एक मोटा–मोटा ब्यौरा पेश किया। संवाददाताओं ने सवालों की झड़ी लगा दी। तब तक भोपाल में अंतर्राष्ट्रीय प्रेस पूरे दमखम के साथ आ चुका था। डॉ. वरदराजन ने कुछ सवालों के जवाब दिए लेकिन अधिकांश के बारे में जनहित के नाम पर जानकारी देने से इंकार कर दिया। जो जानकारी पहले से ही मीडिया में आ चुकी थी उससे आगे बढ़ना डॉ. वरदराजन ने उचित नहीं समझा। मैं प्रेसवार्ता में खड़ा सोच रहा था कि देश के शीर्षस्थ वैज्ञानिक पद पर नियुक्त डॉ. वरदराजन क्या वास्तव में इससे अधिक नहीं जानते या किसी अन्य कारण से अपनी जानकारी को सार्वजनिक करने से कतरा रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि इनको सरकारी आदेश था कि जनता को कार्बाइड हादसे की वैज्ञानिक हकीकत न बताएं? लेकिन आखिर सरकार ऐसा क्यों करेगी, यह पचा पाना मुश्किल हो रहा था। यह भी सवाल उठना शुरू हो गया था कि इतनी ताकतवर भारत सरकार यूनियन कार्बाइड को उसके कारखाने के बारे में पूरी जानकारी सार्वजनिक करने के लिए मजबूर क्यों नहीं कर पा रही। यह भी पता चल गया था कि इस कॉरपोरेशन ने अमरीका स्थित अपनी विशाल प्रयोगशाला – बुशी रन लेबोरेटरी – में लगभग 20 साल तक कारखाने से संबंधित रासायनिक प्रक्रियाओं पर और जहरीली गैस 'मिक' के इंसानों पर होनेवाले असरों पर शोध किया है। यदि इस शोध की जानकारी कॉरपोरेशन खुद सार्वजनिक नहीं कर रही तो भारत सरकार उसे बाध्य क्यों नहीं कर रही? उन्हीं दिनों कार्बाइड के अध्यक्ष वारेन एंडरसन को भारत में गिरफ्तार किया गया था। साधारण से अपराधी को भी गिरफ्तारी के बाद छूटने के लिए मुचलके की शर्तों को पूरा करना पड़ता है। यहां तो इस कॉरपोरेशन ने सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया था और लाखों लोगों को बीमार कर दिया था। क्या इससे बड़ा कोई हत्याकांड हो सकता था? दरअसल, यह हत्याकांड

नहीं वरन् नरसंहार था। इस हत्यारी कार्बाइड के मालिक एंडरसन को रिहा करने के पहले क्या भारत सरकार उनके सामने उनकी प्रयोगशाला में हुए 20 साल के शोध परिणामों को सौंपने की शर्त नहीं रख सकती थी? भोपाल की जनता तो ये सवाल पूछ रही थी लेकिन सरकार ऐसे सभी मसलों पर कार्बाइड की तरह ही चुप्पी साधे हुए थी।

डॉ. वरदराजन की प्रेस विज्ञप्ती पर नज़र डालते ही समझ में आ गया कि इसमें भारी विरोधाभास हैं। तब तक भोपाल में प्रदेश के शहडोल जिले में काम करनेवाले आई. आई.टी., मुंबई से पढ़े हुए रासायनिक इंजीनियर दुनू राय पहुंच चुके थे। कारखाने में जो हुआ उसकी प्रक्रियाओं को समझने के लिए सभी जरूरी ज्ञान उनके पास था। अतः हम दोनों ने मिलकर डॉ. वरदराजन की प्रेस विज्ञप्ती का विश्लेषण किया और उसके विरोधाभासों और 'रिक्त स्थानों' के आधार पर चंदेक तीखे सवाल उठाए। अगले दिन हम दोनों के द्वारा डॉ. वरदराजन से पूछे गए वैज्ञानिक सवाल हरेक अखबार के मुखपृष्ठ पर छपे। जाहिर था कि भोपाल की जनता हादसे के बारे में वैज्ञानिक जानकारी की भूखी थी और हमारे सवालों ने इस भूख को कई गुना बढ़ा दिया था। डॉ. वरदराजन अपनी प्रेसवार्ताओं में जानकारी कम देते थे, छिपाते अधिक थे। चूंकि मसला वैज्ञानिक रूप से जटिल था और मीडियाकर्मियों की समझ के परे था, इसलिए उन्होंने मुझ पर दबाव डाला कि उनकी तरफ से भी मैं ही सवाल पूछूं। इसी कारण कुछ समय बाद इन प्रेसवार्ताओं में मेरे जाने पर पुलिस ने यह कहकर पाबंदी लगा दी कि मैं अधिकृत मीडियाकर्मी नहीं हूं। सरकारी वैज्ञानिकों को सच का इतना डर होगा, यह मैं सोच भी नहीं सकता था।

मुआवजे का राजनीतिक अर्थशास्त्र

भोपालवासियों को अंदाज़ भी नहीं था कि जिस हादसे ने उनके अपनों की जानें ले लीं और उनको बीमार कर दिया, उसके गर्भ में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और मुनाफे की गहरी राजनीति छिपी हुई है। इलाज, पुनर्वास और वित्तीय राहत जैसे मानवीय सवाल भी व्यापार और मुनाफे से जुड़ जाएंगे, यह कौन सोच सकता था। हादसे को एक हफ्ता भी नहीं बीता था कि सैकड़ों अमरीकी वकील गिद्धों के समान भोपाल की लाशों पर उतरने लगे। उनका मकसद गैस पीड़ितों की मदद करना नहीं वरन्

उनको अपना मुव्किल बनाना था। ये वकील व्यक्तिगत तौर पर नहीं आए थे। ये अमरीका की ताकतवर विशाल कानूनी फ़र्मों की ओर से भेजे गए थे। इनके बीच गलाकाट होड़ मची हुई थी कि जल्दी से जल्दी कौन अधिक–से–अधिक मुव्किलों से वकालतनामों पर दस्तख्त करवा लेता है।

अमरीकी कानून में भोपाल जैसे औद्योगिक हादसों के कई प्रकरण निपटाए जा चुके थे, हालांकि वहां के सभी हादसे भोपाल हादसे के मुकाबले में कई गुना छोटे थे। लेकिन हादसा बड़ा हो या छोटा, कानूनी सिद्धांत सभी के लिए एक जैसे होंगे, इस बात को अमरीकी कानूनी विशेषज्ञ जानते थे। एक सवाल उस समय उठ चुका था कि भोपालवासियों के मुआवजे का मामला अमरीकी अदालत में लड़ा जाएगा या भारत की अदालत में। इसका जवाब भी अमरीकी कानूनी फ़र्में जानती थीं। कई बड़े मामलों में यह स्थापित हो चुका था कि ऐसे हादसों में अंतिम जवाबदेही कारखाने को चलानेवाले असली मालिकों की होती है, बीच की मातहत कंपनियों, छोटे–मोटे अधिकारियों या छुटभैया एजेंटों की नहीं। यह स्थापित करना बहुत मुश्किल नहीं होगा कि भोपाल के कार्बाइड कारखाने की असली मालिक यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड नहीं, बल्कि यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन है जिसके मातहत भारतीय कंपनी संचालित है। भारतीय कंपनी में लगी पूंजी का रिश्ता बहुराष्ट्रीय यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन के साथ स्थापित करने के लिए दोनों के बीच आड़ बने कॉरपोरेट पर्दे में छेद करना कानूनी तौर पर मुश्किल नहीं होगा, यह अमरीकी कानून के विशेषज्ञ भलीभांति जानते थे। यदि यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन की जवाबदेही स्थापित हो जाती है तो फिर मुकदमा अमरीकी अदालत में ही लड़ा जाना बेहतर होगा। इस मत के पीछे जो कारण थे उनका जिक्र नीचे किया गया है।

एक बात और। अमरीकी कानून में यह नियम चलता था कि पीड़ित को जो भी मुआवजा मिलेगा उसका एक तयशुदा प्रतिशत कानूनी फ़र्म को मिलेगा। इसलिए भोपाल में उतरनेवाले कानूनी गिद्धों के लिए मुआवजे का सवाल शुद्ध मुनाफे का सवाल बन चुका था। उन्हें यह भी पता था कि अमरीकी अदालत में भारतीय अदालत के मुकाबले कहीं ज्यादा मुआवजा मिलने की संभावना है चूंकि ऐसे मामलों में अमरीकी कानून भारतीय कानून के मुकाबले काफी आगे बढ़ चुका था। इसका कारण यह रहा होगा कि अमरीकी पूंजीवाद के चलते वहां पर औद्योगिक हादसे भी भारत के

मुकाबले अधिक हुए। वहां की अदालतों ने बार–बार मुआवजे का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित किया। इसके अनुसार पीड़ित को मालिक कंपनी के द्वारा दो प्रकार का मुआवजा दिया जाएगा। पहला मुआवजा पीड़ित की क्षतिपूर्ति के लिए दिया जाएगा यानी उसके द्वारा किए गए मेडिकल खर्च, उसको हुए शारीरिक नुकसान और इसके चलते उसकी रोजगार की क्षमता पर हुए असर का वित्तीय अनुमान लगाया जाएगा जिसके लिए कंपनी पर **क्षतिपूर्ति हर्जाना** देने की पूरी जवाबदेही रहेगी। इसके साथ–साथ पीड़ित को हुए भावनात्मक नुकसान की भरपाई भी कंपनी को करनी होगी जिसमें यह भी शामिल होगा कि हादसे के कारण पीड़ित के पारिवारिक व अन्य सामाजिक रिश्तों को क्या नुकसान हुआ है। दूसरा मुआवजा **दंडात्मक हर्जाने** का होगा जो कुछ मामलों में क्षतिपूर्ति हर्जाने से भी बड़ा हो सकता है। दंडात्मक हर्जाने के मायने हैं कि जिन कारणों से पीड़ित को नुकसान हुआ है उनके या इलाज के बारे में यदि कंपनी ने पूर्व जानकारी नहीं दी थी या गलत जानकारी दी थी तो उस कंपनी को दंडस्वरूप पीड़ित को अतिरिक्त हर्जाना देना पड़ेगा। ठीक ऐसा फैसला अमरीकी अदालत ने कैरन सिल्कवुड प्रकरण में दिया था। जिस परमाणु ऊर्जा कंपनी में कैरन सिल्कवुड कर्मचारी थी उसने कारखाने में मौजूद रेडियोधर्मी विकीरण के कैंसर–जनित खतरों की पूरी जानकारी छिपा ली थी। इसलिए अमरीकी अदालत ने कैरन सिल्कवुड के परिवार को क्षतिपूर्ति हर्जाने की तुलना में 25 गुना अधिक दंडात्मक हर्जाना दिलवाया। इस कानूनी मिसाल से भी भोपाल में उतरनेवाले अमरीकी गिद्ध परिचित थे।

इसलिए हादसे के अगले कई हफ्तों तक भोपाल की गलियों और झुग्गी– झोपड़ियों में अमरीकी वकील बड़ी तादाद में घूमते पाए गए। हिंदी–उर्दू न जानना उनके लिए कतई दिक्कत नहीं बनी। मुआवजे की इस लड़ाई में अपेक्षित मुनाफा इतना बड़ा था कि अमरीकी वकीलों को बड़ी आसानी से भारतीय वकील उनकी शर्तों पर एजेंटों के रूप में मिल गए। तुरत–फुरत वकालतनामे के हिंदी और उर्दू में अनुवाद हुए और पीड़ितों के घरों में जा–जाकर और उन्हें झूठे सपने दिखाकर मुव्वकिल बनाया गया। इस सारी प्रक्रिया में पीड़ितों से कोई पैसा भी नहीं लिया गया चूंकि पैसा तो उनके मुआवजे के प्रतिशत के रूप में मिलना ही था। इस दौरान भारत सरकार और राज्य सरकार क्या कर रहीं थीं? ये दोनों सरकारें पीड़ितों के प्रति अपनी संवैधानिक

जवाबदेही के प्रति पूरी तरह सोई हुई थीं और उनको कोई फर्क नहीं पड़ रहा था कि भोपाल के हजारों पीड़ितों के मुआवजे की सारी लड़ाई लड़ने का हक अमरीकी कानूनी फर्मों को दस्तख्त और दस्तावेजों सहित सौंपा जा रहा है। अमरीकी वकील गैस पीड़ितों की मजबूरी का लाभ उठाकर उनके मूल मृत्यु प्रमाणपत्र, डॉक्टरी नुस्खे और मेडिकल रिपोर्टें भी ले गए ताकि ये किसी और वकील या अदालत के पास न जा सकें। इस तरह गैस पीड़ितों के पास से यूनियन कार्बाइड से मुआवजा मांगने का सबूत ही छीन लिया गया। उस समय कई समझदार गैस पीड़ित यह सवाल पूछ रहे थे कि क्या भोपाल में कोई सरकार है भी या नहीं। क्या कोई भी अमरीकी वकील यहां आकर मनमाने ढंग से भारतीय नागरिकों को झूठमूठ कुछ समझाकर वकालतनामे और उनके मेडिकल सबूत लेकर अपने मुल्क लौट जाएगा और हमारी सरकार तमाशबीन बनी रहेगी? यह सवाल आज भी जवाब का इंतजार कर रहा है।

यह दीघर बात है कि सोई हुई सरकार बाद में जागी और भारतीय संविधान की दुहाई देकर उसने संसद में भोपाल गैस पीड़ितों के लिए एक अधिनियम पारित करवाया। इस 'भोपाल गैस रिसन हादसा (दावों का निपटारा) अधिनियम, 1985' के जरिए भारत सरकार ने सभी गैस पीड़ितों का इलाज व पुनर्वास करने, राहत देने और मुआवजे की लड़ाई लड़ने की पूरी जवाबदेही अपने हाथों में ले ली। इस मजबूत दिखनेवाले अधिनियम के पीछे भारत सरकार की यूनियन कार्बाइड की मदद करने की जो मंशा छिपी हुई थी, वह आनेवाले समय में परत-दर-परत उजागर हुई। अंततः फरवरी 1989 में सुप्रीम कोर्ट में भारत सरकार और यूनियन कार्बाइड के बीच हुआ शर्मनाक समझौता इस विडंबना का साक्षी बना। इसकी कहानी आगे है।

यदि भारत सरकार और उनके द्वारा भोपाल भेजे गए वैज्ञानिक दल ने कार्बाइड को अपनी तमाम वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए मजबूर किया होता तो यह कानूनी सबूत भी बन जाता कि कंपनी ने भोपालवासियों से जानकारी छिपाई है। यह सबूत कालांतर में भोपाल की अदालत से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक कार्बाइड पर दंडात्मक हर्जाना देने के लिए पुख्ता आधार देता। लेकिन ऐसा कुछ नहीं किया गया। वैज्ञानिक जानकारी और मुआवजे के रिश्ते पर आगे हम और बहुत कुछ कहेंगे।

आंदोलन का उभरना

जैसा कि ऊपर जिक्र किया गया है, 4 दिसंबर की सवेरे जब मैं और सत्यू भोपाल के गैस पीड़ित इलाके में पहुंचे तो भोपाल के हमारे सभी साथी राहत के काम में जुटे हुए थे। हम भी उसमें भागीदार बने। लेकिन जल्द ही सबने मिलकर तब तक हो रही घटनाओं की समीक्षा की और तय किया कि इस मामले में यूनियन कार्बाइड इलाज और पुनर्वास के प्रति अपनी कोई भी जवाबदेही नहीं स्वीकारेगी चूंकि इसको स्वीकारते ही उसकी मुआवजे की जवाबदेही भी तय हो जाती है। मुआवजे में क्षतिपूर्ति और दंडात्मक दोनों प्रकार के हर्जाने शामिल हैं, इसे यूनियन कार्बाइड से बेहतर कौन जानता होगा। इस पूरे मामले में भारत सरकार और राज्य सरकार यूनियन कार्बाइड का बचाव करेंगी, यह भी दिखने लगा था। एंडरसन की गिरफ्तारी का ढोंग, कार्बाइड को जहरीली गैस की सही पहचान बताने और इलाज की जानकारी देने के लिए मजबूर न करना, डॉ. वरदराजन का भ्रामक एवं अधकचरा वैज्ञानिक बयान और सरकार द्वारा गैस पीड़ितों के पक्ष में कोई भी विश्वसनीय कदम उठाने की घोषणा न करना, ये सब वे शुरूआती संकेत थे जिनको हमने अपने सलाह–मशविरे में दर्ज किया। इसलिए 7 दिसंबर को फैसला लिया गया कि हम एक संगठन का निर्माण करेंगे जो गैस पीड़ितों के इलाज, पुनर्वास और मुआवजे की लड़ाई को आंदोलन का रूप देगा ताकि सरकार और यूनियन कार्बाइड के बीच उभर रही सांठगांठ से जूझा जा सके। हमारे समूह में भोपाल के कई समाजकर्मी, चित्रकार, रंगकर्मी, वकील, बैंक कर्मचारी, वैज्ञानिक, ट्रेड यूनियन के कार्यकर्ता, शिक्षक और विद्यार्थी शामिल हुए। संगठन का नाम 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा' रखा गया। इस नामकरण को करते हुए दो बातें ध्यान में रखी गईं। एक, नाम में उस दौर में मीडिया में प्रचलित 'त्रासदी' जैसा शब्द नहीं रखा गया चूंकि त्रासदी के साथ एक असहाय होने का भाव जुड़ जाता है और लगता है कि जैसे वह अचानक हो गई कोई दुर्घटना थी। इस भाव के चलते हादसे के राजनीतिक व आंदोलनात्मक आयाम छूट जाते हैं। 'कांड' शब्द में राजनीतिक आयामों के लिए पूरी गुंजाइश रहती है। दूसरा, इस नाम में राहत से जुड़ा हुआ कोई दया भाव भी नहीं था चूंकि हम समझ गए थे कि गैस पीड़ितों को पूरी राजनीतिक चेतना के साथ अपने हक की लड़ाई लड़नी होगी, तभी उनको इलाज, पुनर्वास और मुआवजा मिल पाएगा। गैस पीड़ितों

को कुछ भी खैरात के रूप में नहीं मिलेगा वरन् जो मिलेगा वह एक लंबी लड़ाई के कारण ही मिलेगा। इस समझ के साथ 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा' (आगे हम इसे सिर्फ 'मोर्चा' कहेंगे) का जन्म हुआ। उस चरण में यह जरूरत भी किसी को नहीं लगी कि संगठन का कोई औपचारिक ढांचा होना चाहिए या उसकी सदस्यता के कोई नियम बनने चाहिए। यह भी विचार नहीं हुआ कि संगठन और आंदोलन के बीच क्या रिश्ता होगा या आंदोलन की रणनीति क्या होगी। उस समय केवल यह विश्वास था कि हमें भोपाल में गैस पीड़ितों का आंदोलन खड़ा करना है ताकि उन्हें अपना हक मिल सके और यूनियन कार्बाइड को पूरी सजा। इस मासूमियत के साथ लड़ाई की शुरूआत हुई।

आंदोलन का आदर्श सूत्र तय हुआ – "जन अधिकार, जन विज्ञान, जन एकता की लड़ाई"। ऊपर डॉ. वरदराजन के बयानों पर हमने जो वैज्ञानिक सवाल उठाए वे मोर्चे के नवगठित तकनीकी प्रकोष्ठ की ओर से ही उठाए थे। यह शुरूआत थी भोपाल हादसे के मसले पर जन विज्ञान की समझ लागू करके आंदोलन खड़ा करने की। आगे ऐसे और उदाहरण मिलेंगे।

16 दिसंबर 1984 को सरकार ने 'ऑपरेशन फेथ' यानी 'ऑपरेशन आस्था' या 'आस्था अभियान' की घोषणा करके भोपालवासियों को शहर छोड़कर अन्यत्र जाने को मजबूर किया। सरकारी तर्क यह था कि इस कारखाने में मौजूद खतरनाक जहरीले रसायनों को वहां से हटाकर भोपाल को सुरक्षित करना है और इसके लिए भोपाल खाली होना जरूरी है। दुनिया के इतिहास में शायद पहली बार हुआ होगा कि सरकारी आदेश पर उस शहर के लाखों बाशिंदों ने शहर छोड़ा हो। इस खाली भोपाल में डॉ. वरदराजन का केंद्रीय वैज्ञानिक दल कार्बाइड के कारखाने में क्या–क्या करता रहा, कैसे किया, कौनसे रसायन हटाए गए या नहीं हटाए गए और भोपाल दरअसल सुरक्षित हुआ या नहीं, यह सारी हकीकत भोपाल की जनता कभी नहीं जान पाई। कार्बाइड का कारखाना पूरी तौर पर पुलिस और फौज के कब्जे में था। जो भोपालवासी शहर छोड़कर नहीं गए, जिनमें मोर्चे के सभी साथी शामिल थे, उनकी हर हरकत पर सरकार की जासूसी निगाह थी मानो कि वे देश के नागरिक नहीं वरन् कोई दुश्मन हों।

इसी दौरान भोपाल में छूट गए लोगों ने नारा गढ़ा –

"भोपाल की गलियां सूनी हैं, यूनियन कार्बाइड खूनी है।"

लोगों की कल्पना आगे बढ़ी और अगला नारा गढ़ा गया –

"यूनियन कार्बाइड ने क्या किया? भोपाल का सत्यानाश किया।
सरकार ने क्या किया? यूनियन कार्बाइड का साथ दिया।"

इस 'ऑपरेशन आस्था' के दौरान अनेक सरकारी व गैर–सरकारी और देशी–विदेशी एजेंसियां राहत के नाम पर सक्रिय हो गई थीं। उनके बीच कोई तालमेल बैठाने की सरकारी कोशिश नहीं थी। अतः जब लोग वापिस लौटे तो उन्हें हर रोज अनेक सर्वे फ़ार्मों का सामना करना पड़ा। रोज विभिन्न एजेंसियां अपने–अपने ढंग के फ़ार्म भरवाने के लिए आ धमकती थीं। और साथ में अक्सर होते थे अमरीकी वकील। लोगों के द्वारा अपने घर–परिवार और जीवन के बारे में फ़ार्मों के जरिए दी जा रही जानकारी किसके पास जा रही है, उसका क्या इस्तेमाल होगा, कौन करेगा, ऐसे अनेक सवाल पीड़ितों की पीड़ा बढ़ा रहे थे, लेकिन जवाब देनेवाला कोई नहीं था। ऐसे नाजुक माहौल में मोर्चे ने एक अलग भूमिका निभानी शुरू की। हम लोग गैस पीड़ित बस्तियों में घरों में जाकर न तो जानकारी बटोरते थे, और न ही फ़ॉर्म भरवाते थे वरन् लोगों का दुःख–दर्द सुनते थे और उनके साथ दोस्तियां करते थे। इस इंसानी व्यवहार से जो रिश्ता बना उसीने आगे आंदोलन की जमीन तैयार की। सरकार का जो 'ऑपरेशन आस्था' जनता की नजर में 'ऑपरेशन भ्रम' बन चुका था उसी की जगह उन्हीं बस्तियों में एक बार फिर निराशा को आशा में बदलने के लिए पीड़ितों के बीच हम लोगों ने नया ताना–बाना बुनने की कोशिश की। आज जब उन दिनों को याद करते हैं तो समझ में आता है कि यह मानवीय व्यवहार ही अपने आप में एक सही राजनीति थी।

वैज्ञानिक जांच–पड़ताल को नकारना – कार्बाइड का बचाव

मोर्चे के अंदर जनविज्ञान की समझ धीरे–धीरे उभर रही थी। इसका पहला कदम हमने मेडिको फ्रेंड सर्किल नामक डॉक्टरों के एक अखिल भारतीय स्वयंसेवी समूह के साथ उठाया। उनकी दो महिला डॉक्टर प्रतिनिधि भोपाल आईं और उन्होंने हमारे साथियों की मदद से गैस पीड़ित महिलाओं की बढ़ती हुई प्रजनन अंगों संबंधी

शिकायतों का अध्ययन शुरू किया। यह बात दिसंबर के तीसरे–चौथे सप्ताह की है। ये शिकायतें सरकारी अस्पतालों और निजी डॉक्टरों तक भी पहुंच रहीं थीं लेकिन इनको गंभीरता से नहीं लिया जा रहा था। जिन शिकायतों को सरकारी मेडिकल तंत्र द्वारा अधिकारिक तौर पर गैस के कारण पैदा हुए लक्षण माना गया था उनमें उस समय मुख्यतः सांस फूलना, थकान महसूस करना और आंखों से पानी बहना ही थे। इनमें महिलाओं की प्रजनन संबंधी शिकायतों के लिए कोई जगह नहीं थी। लेकिन मेडिको फ्रेंड सर्किल की महिला डॉक्टरों ने बहुत ही कम समय में अपने अध्ययन से यह स्थापित कर दिया कि गैस के कारण महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य पर कई प्रकार के असर हुए हैं जिनमें स्वतः गर्भपात और मृत शिशु पैदा होने की दर बढ़ जाना, बच्चादानी में शिशु का हिलना–डुलना बंद हो जाना या असाधारण रूप से हिलना–डुलना, अनियमित मासिक धर्म व अतिरिक्त खून निकलना और सफेद पानी बहना शामिल हैं। इस अध्ययन की रिपोर्ट गैस पीड़ित बस्तियों में बांटी गई। इसमें यह सलाह दी गई थी कि जहरीली गैस के प्रजनन स्वास्थ्य पर हुए असर के मद्देनजर यह बेहतर होगा कि गर्भवती महिलाएं (यदि उनका गर्भ ढाई माह के अंदर का है) गर्भपात करवा लें और तब तक गर्भधारण न करें जब तक वे गैस के कारण हुई बीमारियों से ग्रस्त हैं।

जैसे ही यह रिपोर्ट सरकारी मेडिकल तंत्र के पास पहुंची तो उनकी ओर से भारी आपत्ति की गई। यह कहा गया कि मोर्चे से जुड़े हुए गैर–सरकारी डॉक्टर गैस पीड़ित महिलाओं को गलत सलाह दे रहे हैं और बिलावजह उनका तनाव बढ़ा रहे हैं। यह दावा किया गया कि जहरीली गैस का कोई भी असर प्रजनन तंत्र पर नहीं पड़ सकता चूंकि यह 'मिक' गैस है जो फेफड़ों की सतह पर मौजूद पानी की परत को छूते ही निष्प्रभावी हो जाती है (रासायनिक दृष्टि से पानी के साथ क्रिया करने पर उसका 'हाइड्रॉलिसिस' हो जाता है)। इसलिए जहरीली गैस का असर केवल आंखों और फेफड़ों की सतहों तक ही सीमित है, यह सरकारी दावा (जो दरअसल कार्बाइड का दावा था) अर्धसत्य था चूंकि इसके जरिए बगैर किसी वैज्ञानिक आधार के यह भ्रम फैलाया जा रहा था कि जहरीली गैस केवल 'मिक' थी और उसमें कोई और जहरीले रसायन नहीं थे। एक और मायने में उक्त कथन अर्धसत्य था। 'मिक' गैस का पानी की परत को छूते ही निष्प्रभावी होने का अवलोकन तब का है जब

'मिक' की मात्रा बहुत कम (0.02 पी.पी.एम.) होती है। भोपाल हादसे में जितनी 'मिक' निकली उसके आधार पर एक अध्ययन में लगाए गए अनुमान के अनुसार 'मिक' की मात्रा कहीं अधिक (27 पी.पी.एम.) यानी लगभग 1400 गुना रही होगी। 'मिक' के इस ऊंचे स्तर पर पानी के संपर्क में आने पर क्या होता है, इस पर कार्बाइड की ओर से कोई जानकारी नहीं दी गई। स्पष्ट है कि सरकार द्वारा मोर्चे पर लगाए जा रहे आरोप न केवल निराधार थे बल्कि इलाज की वैज्ञानिक रणनीति बनने और कार्बाइड के खिलाफ मुआवजे हेतु सबूत बटोरने में बाधक बन रहे थे।

उपरोक्त सरकारी दावे को एक लंबे अर्से तक केंद्रीय सरकार की इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आई.सी.एम.आर.) का समर्थन मिलता रहा। यह हमारे लिए भोपाल हादसे का पहला वैज्ञानिक प्रकरण था जिसमें हमने पाया कि यूनियन कार्बाइड और सरकारी दावे एक समान हैं। इन दोनों दावों का एक ही मकसद है – यह स्थापित करना कि जहरीली गैस केवल 'मिक' थी और 'मिक' का असर महज आंखों और फेफड़ों की सतहों तक सीमित है यानी शरीर के अंदरूनी अंगों पर इसका कोई असर नहीं हो सकता। यह दावा करना यूनियन कार्बाइड के पक्ष में था चूंकि यह उसकी मुआवजे के लिए जवाबदेही को न्यूनतम करता था। जाहिर है कि जहरीली गैस का असर शरीर के जितने अधिक अंगों पर होगा उतनी अधिक और लंबी बीमारियां गैस पीड़ितों को होंगी और उसी अनुपात में यूनियन कार्बाइड की मुआवजे की जवाबदेही बढ़ेगी। उस समय जो गैस पीड़ित महिलाएं गर्भवती थीं उनके बच्चों में बरसों बाद वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला कि जन्मजात आनुवांशिक या वंशानुगत (जेनेटिक) बीमारियों और विकृतियों की दर बढ़ गई है। हाल में छपे कुछ शोधपत्र यह भी दिखाते हैं कि हादसे के दौर में गर्भवती गैस पीड़ित महिलाओं के बच्चों के क्रोमोसोम (कोशिकाओं में मौजूद वे सूत्र जिनमें आनुवांशिक जानकारी होती है) में विकृतियों की दर बढ़ जाती है। लेकिन मेडिको फ्रेंड सर्किल के दिसंबर 1984 से फरवरी 1985 तक किए गए अध्ययन से निकले प्रारंभिक संकेतों को बरसों तक मानने से इंकार करके सरकारी मेडिकल तंत्र और आई.सी.एम.आर. ने गैस पीड़ित महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य के इलाज की निश्चित ही अनदेखी की और अगली पीढ़ी के कई बच्चों को ज़िंदगी भर आनुवांशिक बीमारियों को झेलने के लिए अभिशप्त किया। इसका असली फायदा यूनियन कार्बाइड ने फरवरी 1989 के सुप्रीम कोर्ट के

समझौते में उठाया जिसके जरिए उसे आगामी पीढ़ी में पाए जानेवाले किसी भी प्रकार के आनुवांशिक प्रभावों की जवाबदेही (खासकर मुआवजे की) से बरी कर दिया गया।

हादसे की उस रात जहरीली गैस से जुड़ा एक और सटीक सवाल भोपाल की जनता पर हावी था। यह जहरीली गैस भोपाल शहर के किन–किन इलाकों में गई और कब व किस मात्रा में पहुंची। इस सवाल का महत्व समय बीतने के साथ बढ़ता गया। केंद्रीय सरकार की ओर से आई.सी.एम.आर. ने जिन बस्तियों को पहले दौर में गैस प्रभावित के रूप में पहचाना था उनमें हरेक मकान पर पहचान पट्टी लगा दी गई थी ताकि उनको योजनाबद्ध तरीके से राहत का पैकेज मिल सके। लेकिन जैसे–जैसे राहत की मांग बढ़ती गई वैसे–वैसे नई–नई बस्तियों से बढ़ते क्रम में आवाज उठी कि उनको भी इलाज, पुनर्वास और मुआवजे के दायरे में शामिल किया जाए। यहां तक कि नए भोपाल के ऊपरी मध्यम वर्ग और संपन्न इलाकों से भी दबाव बनाया गया कि उन्हें भी गैस पीड़ित माना जाए, हालांकि यह जगजाहिर था कि वहां या तो जहरीली गैस पहुंची ही नहीं थी या उसका असर नाममात्र का था। कालांतर में गैस पीड़ित इलाका कौनसा है और कौनसा नहीं, यह अपने–आप में एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन गया। इलाज, पुनर्वास और मुआवजे की पुख्ता योजना तभी बन सकती थी जब यह तय हो कि गैस प्रभावित इलाका कौनसा है और कौनसा नहीं। मोर्चे की ओर से यह सवाल उठाया गया कि क्या यह तय करने का कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं है। इसके जवाब में प्रदेश और केंद्र दोनों की सरकारों एवं उनके वैज्ञानिक तंत्रों ने चुप्पी साध ली।

जवाब खोजते–खोजते मैं आई.आई.टी., दिल्ली में मौसम विज्ञानियों की प्रयोगशाला में पहुंचा। उनके सामने अपना सवाल रखा। वे मुस्कुराए और तुरंत अपना कंप्यूटर खोलकर भोपाल के नक्शे पर जहरीली गैस कैसे फैली, कहां–कहां गई और किस मात्रा में पहुंची, इसका एक पूरा अध्ययन मेरे सामने पेश कर दिया। मैं अवाक रह गया। उनसे पूछा कि ये सब कैसे और कब किया गया। उन्होंने बताया कि मौसम विज्ञान में यह एक स्थापित तरीका है जिसमें वायुमंडल में किसी भी गैस के फैलने की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए पुख्ता गणितीय मॉडल विकसित किए गए हैं। हादसे के तुरंत बाद इन वैज्ञानिकों को लगा कि उनके इस ज्ञान का लाभ भोपालवासियों को मिलना चाहिए। अतः उन्होंने अपना वैज्ञानिक कर्तव्य निभाते हुए

अपने शोधकर्ताओं की एक टीम हादसे के दो–तीन दिन बाद ही भोपाल भेजी। इस टीम ने भोपाल के मौसम केंद्र से उस सर्द रात को भोपाल के तापमान, हवा के प्रवाह और दिशा आदि से संबंधित तमाम आंकड़े बटोरे। इस जानकारी के आधार पर आई. आई.टी. के वैज्ञानिकों ने दिन–रात एक करके भोपाल के नक्शे पर जहरीली गैस के फैलाव (तकनीकी तौर पर विसरण या डिफ्यूज़न) का कंप्यूटर मॉडल तैयार कर दिया। इस मॉडल में यह जानकारी भी थी कि किन बस्तियों में किस मात्रा में जहरीली गैस संभावित तौरपर पहुंची होगी। इसके आधार पर भोपाल को अधिक प्रभावित, मध्यम प्रभावित और कम प्रभावित बस्तियों में बांटा जा सकता था। जिन इलाकों में गैस नहीं पहुंची, उनकी भी पहचान हो सकती थी। आई.आई.टी. के वैज्ञानिकों ने अपनी पहल पर इस अध्ययन की रिपोर्ट केंद्रीय सरकार तक पहुंचा दी लेकिन वहां से न तो कोई जवाब आया और न ही इसके आधार पर इलाज, पुनर्वास और मुआवजे की कोई योजना बनाई गई। उलटे उन देशप्रेमी और जनवादी वैज्ञानिकों को सरकार ने अनौपचारिक संकेत दिए कि इस अध्ययन को सार्वजनिक न किया जाए।

जाहिर है कि यदि मौसम विज्ञान के इस ज्ञान का फायदा उठाया गया होता तो भोपाल में बाद में उठनेवाली बहुत सारी समस्याएं या तो उठती ही नहीं या उनका समाधान करना मुमकिन हो जाता। केवल यही नहीं, जब मुआवजे का मामला फरवरी 1989 में सुप्रीम कोर्ट पहुंचा तो वहां मांगी गई बहुत सारी जानकारी इस अध्ययन के आधार पर सबूत बतौर पेश की जा सकती थी। सरकार द्वारा अपने ही वैज्ञानिक संस्थानों की जांच–पड़ताल को नकारना और देश में मौजूद वैज्ञानिक क्षमता का समुचित इस्तेमाल न करना किसके हित में था, यह सवाल भोपाल की लड़ाई में पुरजोर उठाया गया। निःसंदेह, इस सरकारी रवैये का पूरा फायदा यूनियन कार्बाइड को मिला।

ऊपर हमने दो मुद्दों को लेकर जो कहानी सुनाई है वह पूरे हादसे के विभिन्न वैज्ञानिक पक्षों को लेकर बार–बार घटी। आगे हम ऐसी ही कहानी जहरीली गैस में कौन से रसायन थे, गैस पीड़ितों के शरीर में से जहर निकालने के लिए थायोसल्फेट इंजेक्शन देने की उपयोगिता और पेशाब में थायोसायनेट की मात्रा जांचना, जहरीले रसायन शरीर में टिके या नहीं आदि ऐसे कई अन्य सवालों को लेकर पेश करेंगे।

जानकारी का खेल – राजसत्ता–कार्बाइड सांठगांठ की शुरूआत

दिसंबर 1984 खत्म होते–होते बस्तियों में आए दिन लोगों का आक्रोश फूट रहा था। सरकार आश्वासन दे रही थी कि गैस पीड़ितों की बीमारियां जल्द ही ठीक हो जाएंगी। कार्बइड की ओर से भी यही कहा जा रहा था कि 'मिक' का असर ज्यादा देर नहीं टिक सकता। डॉ. वरदराजन के वैज्ञानिक दल की भ्रामक प्रेसवार्ताओं का सिलसिला ख्तम हो चुका था। चारों ओर से गैस पीड़ितों में नई–नई बीमारियों के फैलने की खबरें आ रहीं थीं। रेलवे स्टेशन के कुली सामान नहीं उठा पा रहे थे चूंकि सांस फूलने के अलावा उनको जल्द थकान आ जाती थी। ऑटो रिक्शा ड्रायवर लाल व हरी बत्ती में फर्क नहीं कर पा रहे थे चूंकि उनकी आंखों में रंग पहचानने की क्षमता कमजोर (कलर ब्लाईंड) हो गई थी। सूती मिल के मजदूर भी जल्दी थक जाने के कारण नियमित रूप से काम पर नहीं जा पा रहे थे। गैस पीड़ित गहरे अवसाद (डिप्रेशन) का शिकार हो रहे थे। जनवरी 1985 में जब स्कूल दोबारा खुले तो बच्चे भी गुमसुम बैठे थे और उनकी पढ़ने व खेलने–कूदने में दिलचस्पी खत्म हो चुकी थी। ऐसे हादसों के बाद अवसाद एक महामारी के रूप में फैलता है, इसकी रिपोर्टें दुनिया भर में पूर्व में हुए औद्योगिक हादसों से उपलब्ध थीं। लेकिन इसके बावजूद सरकार के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य को जो नुकसान हुआ और उसको किस तरह प्रदेश के मेडिकल तंत्र ने दरकिनार किया, उसका विवरण ऊपर दिया गया है। लेकिन प्रदेश के मुख्यमंत्री ने एक टी.वी. साक्षात्कार में बिना किसी वैज्ञानिक आधार के कहा कि घबड़ाइए नहीं, सब जल्द ही ठीक हो जाएगा, 'मिक' का असर ज्यादा देर नहीं टिकेगा। गैस पीड़ित पूछ रहे थे कि यह बयान प्रदेश के जनादेश प्राप्त मुख्यमंत्री दे रहे हैं या यूनियन कार्बाइड के मालिक।

इस माहौल में स्वाभाविक था कि भोपाल में उभर रहा यह अविश्वास, संदेह और आक्रोश एक आंदोलन का रूप लेता। 3 जनवरी 1985 को लगभग 10 हजार गैस पीड़ित मोर्चे के नेतृत्व में मुख्यमंत्री निवास पर पहुंचे और यह मांग की कि उन्हें कार्बाइड के हादसे का सच बताया जाए। गैस पीड़ितों का इस बात पर जोर था कि सरकार और कार्बाइड मिलकर जहरीली गैस के बारे में वैज्ञानिक जानकारी छिपा रहे हैं और जब तक सही जानकारी सार्वजनिक नहीं की जाएगी तब तक इलाज और

पुनर्वास का सही इंतजाम नहीं हो पाएगा। मुख्यमंत्री दिल्ली गए हुए थे तो सैंकड़ों लोग (महिलाओं समेत) उनके निवास को घेर कर वहीं बैठ गए। यह धरना 12 जनवरी तक जारी रहा। भोपाल की गैस पीड़ित बस्तियों ने उस दौरान स्वयंस्फूर्त ढंग से धरने पर बैठे लोगों के लिए चाय–नाश्ते से लेकर भोजन तक की पूरी व्यवस्था की। धरने के दूसरे दिन मुख्यमंत्री ने सौ लोगों के एक प्रतिनिधि मंडल को मिलने के लिए अपने निवास के अंदर बुलाया। उस तनावपूर्ण माहौल में कैंची छोला बस्ती के लियाकतभाई बुलंद आवाज में मुख्यमंत्री से पूछ रहे थे, "हमें तुरंत बताया जाए कि कार्बाइड के कारखाने के अंदर अभी भी कौन–कौन से जहरीले रसायन पड़े हुए हैं जिनसे हमारी जान को खतरा हो सकता है।" मुख्यमंत्री ने केंद्रीय वैज्ञानिक दल के नेतृत्व में संपन्न हुए ऑपरेशन आस्था का हवाला देते हुए दिलासा दी कि सब जहरीले रसायन हटाए जा चुके हैं, अब कोई खतरा नहीं है। लेकिन जनता को इन आश्वासनों पर कोई भरोसा नहीं था। अतः लियाकतभाई ने मांग रखी कि, "जनता की ओर से देश के वैज्ञानिकों के एक दल को कारखाने के अंदर जाकर जांच–पड़ताल करने की इजाजत दी जाए। मोर्चा ऐसे वैज्ञानिकों का एक दल गठित करने को तैयार है। यदि इसकी इजाजत मिलेगी तभी जनता को आपकी बातों पर भरोसा होगा।" जाहिर था कि जनता की नजर में सरकार कार्बाइड के साथ खड़ी थी, न कि उनके साथ। मुख्यमंत्री ने ऐसी इजाजत की मांग को सिरे से खारिज कर दिया। इस बात पर प्रतिनिधि मंडल ने अपने 30 सूत्री मांगपत्र पर आगे बात करने से इंकार कर दिया और धरना जारी रखने का एलान कर दिया। यह घटना भोपाल में उस समय सरकार और जनता के बीच उभर रहे आस्था के भारी संकट को रेखांकित करती है जो यूनियन कार्बाइड (और अब डाऊ केमिकल) के संदर्भ में आज तक बरकरार है।

9 जनवरी 1985 को मोर्चे की ओर से श्यामला हिल्स पर स्थित मुख्यमंत्री निवास से थोड़ा और आगे जाकर यूनियन कार्बाइड के विशाल शोध केंद्र के बाहर एक जनसभा की गई। वहां भी यही पूछा जा रहा था कि इस गोपनीय शोध केंद्र के अंदर क्या काम होता है और यहां से निकले शोध परिणामों का क्या इस्तेमाल हो रहा है। तब तक दिल्ली साइंस फोरम की एक रिपोर्ट जारी हो चुकी थी जिसमें बताया गया था कि कार्बाइड के कारखाने में जिन रसायनों का इस्तेमाल होता है उनके आधार पर रासायनिक युद्ध के लिए रासायनिक हथियार भी बनाए जा सकते हैं। इसलिए उक्त

जनसभा में सरकार से यह पूछा गया कि कहीं यूनियन कार्बाइड इस शोध केंद्र में कीटनाशक दवाई बनाने की आड़ में रासायनिक हथियारों का निर्माण तो नहीं कर रही। इन गंभीर सवालों का कोई जवाब नहीं मिल रहा था। इसलिए जनसभा में यह मांग उठाई गई कि इस शोध केंद्र पर किए जा रहे खर्च पर यूनियन कार्बाइड को केंद्रीय सरकार के आयकर विभाग ने जो करमाफी दे रखी है वह तुरंत रद्द की जाए। गौरतलब है कि इस करमाफी की अनुशंसा करने के लिए आयकर विभाग ने केंद्रीय विज्ञान और प्रोद्योगिकी विभाग को अधिकृत कर रखा था। इसलिए जनसभा की ओर से एक मांग पत्र इस विभाग के तत्कालीन सचिव और विख्यात वैज्ञानिक प्रो. यशपाल को भेजा गया। इसके बावजूद वहां से कोई कार्रवाई नहीं हुई यानी सरकार यूनियन कार्बाइड के साथ खड़ी थी।

थायोसल्फ़ेट की लड़ाई

हादसे की अगली सुबह और आनेवाले दिनों में गैस पीड़ितों की लाशें प्रदेश सरकार की मेडिको लीगल इंस्टीट्यूट में पहुंचाई जा रही थीं। वहां फ़ोरेंसिक मेडिसिन एवं विषविज्ञान के लिए विख्यात प्रो. हीरेश चंद्र के नेतृत्व में उनका शव परीक्षण (ऑटोप्सी) हुआ। शुरूआती जांच रिपोर्टों से पता चला कि मृत गैस पीड़ितों के खून का रंग चटख लाल (चैरी रेड) और ऊतकों (टिश्यू) का गुलाबी था। इसको प्रो. हीरेश चंद्र ने गैस पीड़ितों में सायनाइड जहर होने का संकेत माना। प्रो. हीरेश चंद्र ने सायनाइड जहर की संभावना के मद्देनजर उसके जाने–माने एंटीडोट (जहर निकालनेवाली दवा) सोडियम थायोसल्फ़ेट के इंजेक्शन का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। 12 दिसंबर को जर्मन विषविज्ञानी प्रो. मैक्स डांडरर भोपाल आए और उन्होंने शवों की जांच–पड़ताल के बाद प्रो. हीरेश चंद्र के निष्कर्ष का समर्थन करते हुए सायनाइड के एंटीडोट सोडियम थायोसल्फ़ेट के इंजेक्शन लगाने की सलाह दी। जिन गैस पीड़ितों को ये इंजेक्शन लगाए गए उन्हें लाक्षणिक (बीमारी के लक्षणों पर आधारित) राहत महसूस हुई। आनेवाले दिनों में सोडियम थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन का जो सीमित स्टॉक भोपाल में उपलब्ध था वह देखते–देखते खत्म हो गया।

यहां पर दो बातों का उल्लेख करना जरूरी है। पहली बात, वैज्ञानिक सिद्धांत की है और दूसरी बात, गैस पीड़ितों की बढ़ती हुई बीमारियों की। वैज्ञानिक सिद्धांत का

सवाल यह उठा कि यदि वास्तव में सायनाइड जहर है तो हादसे के इतने दिनों बाद भी सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन का लाभ कैसे दिख सकता है चूंकि स्थापित मेडिकल ज्ञान के अनुसार यदि सायनाइड जहर अधिक मात्रा में है तो पीड़ित की तुरंत मौत हो जाती है और यदि उसकी मात्रा घातक स्तर से कम है तो शरीर के अंदर उसका असर टिकता नहीं है, तेजी से खत्म हो जाता है। कार्बाइड ने इस संशय का लाभ उठाया और सोडियम थायोसल्फेट की उपयोगिता पर बार–बार शक पैदा किया गया। यह तो अपेक्षित ही था चूंकि गैस पीड़ितों को सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन से राहत मिलने के मायने हैं कि जहर शरीर के अंदर टिक गया है और यह बात मुआवजे के मामले में कार्बाइड की जवाबदेही बढ़ा देती। केंद्रीय सरकार के द्वारा भेजे गए शीर्ष वैज्ञानिक भी इस मसले पर कोई विश्वसनीय बात नहीं कह पा रहे थे। उस दौरान न तो यह पता था कि 'मिक' शरीर में कैसे टिक सकती है और न ही यह पता था कि जहरीली गैस में 'मिक' के अलावा क्या कोई और जहरीले रसायन मौजूद हैं। डॉ. वरदराजन तो कार्बाइड के द्वारा दी गई जानकारी को ही दोहराते हुए जहरीली गैस के केवल 'मिक' होने की बात पर अड़े हुए थे। इस भ्रामक हालात में डॉक्टरों के पास केवल एक उपाय था – गैस पीड़ितों को लाक्षणिक उपचार देना यानी मरीज जो लक्षण बताए उसकी जो स्थापित दवाई मालूम है वह दे देना। इस समझ के चलते गैस पीड़ितों को उनकी नाना प्रकार की बीमारियों के मद्देनजर थोक में दवाईयां दी गईं। भोपाल में दवा कंपनियों का धंधा खूब चला। गैस पीड़ितों के पास दवाईयों का अंबार लगा होता था, लेकिन फायदे के नाम पर मामला शून्य था। जाहिर है कि जब जहरीली गैस में कौनसे रसायन हैं और जो हैं उनके शरीर पर होनेवाले प्रभावों के बारे में वैज्ञानिक जानकारी नहीं है तो इलाज केवल लाक्षणिक ही हो सकता है। इस मायने में कार्बाइड के द्वारा वैज्ञानिक जानकारी नहीं देना और भ्रामक जानकारी फैलाना इंसानियत के खिलाफ एक गंभीर अपराध माना जाना चाहिए। अकेले यह तथ्य ही कार्बाइड पर दंडात्मक हर्जाने का दावा ठोकने का पर्याप्त आधार देता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात गैस पीड़ितों के बिगड़ते हुए हालात की है। उनकी बीमारियां थमने का नाम नहीं ले रहीं थीं। समय के साथ नई–नई बीमारियों की शिकायतें बढ़ रही थीं। श्वसन तंत्र के अलावा पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, मासपेशी तंत्र और महिलाओं

के प्रजनन तंत्र के प्रभावित होने की रिपोर्टें लगातार आ रही थीं। यह स्पष्ट होता जा रहा था कि गैस पीड़ित बहुतंत्रीय बीमारियों के शिकार हो चुके हैं, न कि कार्बाइड बतौर केवल आंखों व फेफड़ों की बीमारियों से।

जनवरी 1985 में आई.सी.एम.आर. के अतिरिक्त महानिदेशक डॉ. एस. श्रीरामाचारी ने एक उल्लेखनीय हस्तक्षेप किया। उन्होंने प्रो. हीरेश चंद्र के साथ मिलकर गैस पीड़ितों को सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन से होनेवाले लाभ की वैधता जांचने के लिए 'डबल ब्लाइंड क्लिनिकल ट्रायल' करने की योजना बनाई। इस वैज्ञानिक जांच–पड़ताल से मिले परिणामों से स्थापित हो गया कि अधिकांश गैस पीड़ितों को सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन देने से लाक्षणिक लाभ मिलता है। डॉ. श्रीरामाचारी ने एक और महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी जांच–पड़ताल से पता चला कि गैस पीड़ितों के पेशाब में थायोसायनेट नामक रसायन की मात्रा आम लोगों की तुलना में 2–3 गुना है। सायनाइड जहर से पीड़ित रोगियों के पेशाब में भी थायोसायनेट की मात्रा इसी तरह बढ़ जाती है। यह इसलिए होता है चूंकि सायनाइड शरीर में उपलब्ध सल्फ़र से क्रिया करके थायोसायनेट में बदल जाता है और पेशाब के रास्ते बाहर निकल जाता है। इसी कारण से सोडियम थायोसल्फ़ेट एंटीडोट का काम करता है चूंकि यह स्वयं सल्फ़र का स्रोत है। इसलिए सोडियम थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन देने के बाद गैस पीड़ितों के पेशाब में थायोसायनेट की जांच की गई और पाया गया कि इसकी मात्रा 8–10 गुना बढ़ जाती है। यह तथ्य भी 'डबल ब्लाइंड क्लिनिकल ट्रायल' के जरिए पुख्ता हुआ।

फरवरी 1985 के पहले सप्ताह में आई.सी.एम.आर. की ओर से सोडियम थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन देने और पेशाब में थायोसायनेट का मापन करने की अनुशंसा करते हुए उसकी मार्गदर्शिका भी जारी की। उम्मीद यह थी कि आई.सी.एम.आर. के इस फैसले के बाद राज्य सरकार का पूरा मेडिकल तंत्र सोडियम थायोसल्फ़ेट इलाज को व्यापक तौर पर देने का कार्यक्रम लागू करेगा। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं। सुप्रीम कोर्ट को पेश की गई अल्पमत रिपोर्ट ने बताया कि जून 1985 तक जिन गैस पीड़ितों को आई.सी.एम.आर. की मार्गदर्शिका के अनुसार सोडियम थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन दिए जाने थे उनमें से महज 0.8 फीसदी को यह इलाज मिल पाया। इनमें से भी एक–तिहाई को ये इंजेक्शन जन स्वास्थ्य केंद्र ने लगाए।

जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा ने थायोसल्फेट इंजेक्शन और पेशाबीय थायोसायनेट की वैज्ञानिक जानकारी जनता में प्रसारित की और इसकी मांग के पक्ष में अभियान चलाया। थायोसायनेट की जांच करने के सवाल पर राज्य सरकार ने उसके लिए आवश्यक स्पेक्ट्रोफोटोमीटर नामक यंत्र पर्याप्त संख्या में उपलब्ध न होने का बहाना लगाया। इस पर मोर्चे ने तुरंत सरकार के सामने प्रस्ताव रखा कि भोपाल की विभीषिका यह मांग करती है कि सरकार देशभर में जहां–जहां स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर उपलब्ध हैं वहां से उन्हें तुरंत मंगवाए जाएं ताकि गैस पीड़ितों का वैज्ञानिक इलाज हो सके और मुआवजे के सबूत इकट्ठे हों। सरकार की चुप्पी देखकर मोर्चे ने यह भी प्रस्ताव रखा कि यह काम सरकार की ओर से मोर्चा भी कर सकता है। हमें विश्वास था कि उस समय गैस पीड़ितों के प्रति हमदर्दी की जो लहर देशभर में थी उसके चलते सभी प्रयोगशालाओं से स्पेक्ट्रोफ़ोटोमीटर मंगवाना कोई बड़ी बात नहीं थी। अंततः 99 फीसदी लाक्षणिक मरीजों को थायोसल्फेट इंजेक्शन नहीं लगाए गए और इनके पेशाब में थायोसायनेट की जांच का भी इंतजाम नहीं किया गया। लेकिन भोपाल की जनता इस मसले पर सचेत हो चुकी थी। अप्रैल 1985 में एक अदभुत नजारा देखा गया। गैस पीड़ित इलाके में डीआईजी बंगले में कार्यरत सरकारी क्लिनिक को एक दिन 300 गैस पीड़ित महिलाओं ने घेर लिया। उनके हाथों में पेशाब के नमूनों की बोतलें थीं और वे मांग कर रही थीं कि उनके पेशाब में थायोसायनेट की जांच की जाए। यह जनविज्ञान की लड़ाई की मिसाल है।

सवाल यह है कि सरकार थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन देने और पेशाब में थायोसायनेट की जांच करने से क्यों कतरा रही थी। इसी तरह केंद्र से भी सवाल है कि आई.सी.एम. आर. की अनुशंसा के बावजूद उसने राज्य सरकार पर यथोचित दबाव क्यों नहीं डाला। इस सवाल का जवाब चाहे सरकार न दे लेकिन भोपाल की जनता को जवाब मिल रहा था। थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन देने का मतलब है कि गैस पीड़ितों के शरीर में लंबें अर्से तक जहर टिकने की बात को स्वीकारा जा रहा है। इस इलाज से राहत मिलने से जहर टिकने का सबूत मिल जाता है। गैस पीड़ितों के पेशाब में थायोसायनेट की मात्रा आम लोगों के मुकाबले बढ जाने और थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन देने पर इसमें और ज्यादा वृद्धि होने के मायने हैं कि शरीर में टिका हुआ जहर थायोसल्फ़ेट से क्रिया करके थायोसायनेट के रूप में बाहर निकल रहा है। यदि इस

प्रकार के आंकड़े भोपाल में इकट्ठे हो जाते हैं तो इनका इस्तेमाल कार्बाइड के खिलाफ मुआवजे का दावा करने में किया जा सकेगा, यह साफ है। जाहिर है कि कार्बाइड ऐसा नहीं होने देना चाहती थी। एक मुनाफाखोर कंपनी अपना हित साधने के लिए गैस पीड़ितों का इलाज नहीं होने देगी, यह कोई हैरानी की बात नहीं है। लेकिन देश की चुनी हुई लोकतांत्रिक सरकार भी जनहित को ताक पर रखकर कॉरपोरेट पूंजी का साथ देगी, यह एक गंभीर सवाल है। भोपाल की लड़ाई में मेडिकल तथ्यों को तोड़–मरोड़ करना, वैज्ञानिक आंकड़े नहीं बटोरना एवं मेडिकल सबूत व मुआवजे के बीच के रिश्ते को स्थापित नहीं होने देना, एक केंद्रीय मुद्दा बना।

आगे बढ़ने से पहले यह बताना जरूरी है कि गैस पीड़ितों को थायोसल्फ़ेट से मिलनेवाली राहत और इसके कारण उनके पेशाब में थायोसायनेट की मात्रा बढ़ने की बात सही होने के बावजूद इसे सायनाइड जहर होने का सबूत नहीं माना जा सकता। यह इसलिए चूंकि सायनाइड जहर शरीर में इतने लंबे अर्से तक टिक नहीं सकता। तो फिर उक्त तथ्य की क्या व्याख्या हो सकती है? यह तो तय है कि कार्बाइड की जहरीली गैस, चाहे वह अकेली 'मिक' हो या उसके साथ अन्य जहरीले रसायन भी हों, गैस पीड़ितों के शरीर में लंबे अर्से तक टिक गई और बहुतंत्रीय बीमारियों (और आज तक हो रही मौतों का भी) का आधार बनी। इसीलिए 1985–87 के दौरान थायोसल्फ़ेट उपचार कारगर हुआ और पेशाब में थायोसायनेट की मात्रा बढ़ने का अर्थ जहर का बाहर निकलना माना गया। लेकिन यह जरूरी है कि मेडिकल शोध के जरिए पता लगाया जाए कि जहर किस रूप में शरीर में टिक पाया और किस प्रक्रिया से वह थायोसायनेट में बदलकर बाहर निकला। निःसंदेह, इस सवाल का जवाब ढूंढने में कार्बाइड (अब डाऊ केमिकल) से मदद मिलना तो दूर, वह हर तरह की अड़चन जरूर पैदा करेगी चूंकि यह जवाब उसके व्यापारिक हित में नहीं है। इसका जवाब कुछ हद तक सुप्रीम कोर्ट को पेश की गई हमारी अल्पमत रिपोर्ट में खोजा गया है जिसका जिक्र आगे किया जाएगा।

जन स्वास्थ्य केंद्र – जन विज्ञान की मिसाल

उपरोक्त हालात में हादसे के छह महीने बाद 3 जून 1985 को मोर्चे की पहल पर चार संगठनों ने मिलकर जन स्वास्थ्य समिति का गठन किया। इसमें शामिल संगठन

थे – ट्रेड यूनियन रिलीफ़ फ़ंड (मुंबई), यूनियन कार्बाइड कर्मचारी संघ, नागरिक राहत और पुनर्वास समिति (भोपाल) एवं मोर्चा। जन स्वास्थ्य समिति की ओर से सबसे अधिक प्रभावित बस्ती यानी जयप्रकाशनगर के ठीक सामने कार्बाइड कारखाने के अंदर जन स्वास्थ्य केंद्र की शुरूआत हुई। इस केंद्र ने सर्वप्रथम प्राथमिकता बतौर सोडियम थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन के जरिए गैस पीड़ितों के शरीर में से जहर बाहर निकालने (निर्विषीकरण) का कार्यक्रम उठाया। इस काम में देशभर से व्यापक समर्थन मिला। खासतौर पर, मेडिको फ्रेंड सर्कल, पश्चिम बंगाल ड्रग एक्शन फ़ोरम, जूनियर डॉक्टर एसोसिएशन, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (वाराणसी) एवं वाल्युंटरी हेल्थ एसोसिएशन ऑफ़ इंडिया (नई दिल्ली) ने सक्रिय भूमिका निभाई जिसमें दवाएं भेजने, डॉक्टर उपलब्ध कराने एवं धन बटोरने के अलावा वैज्ञानिक सलाह देना प्रमुख हैं। पश्चिम बंगाल ड्रग एक्शन फ़ोरम (आगे इसे सिर्फ फोरम कहेंगे) की भूमिका का विशेष जिक्र करना जरूरी है। फ़ोरम ने वायदा किया कि वे जन स्वास्थ्य केंद्र को हमेशा डॉक्टर उपलब्ध कराएंगे। अतः अगले साल भर फ़ोरम की ओर से कोलकाता से चक्रिक क्रम में युवा डॉक्टर दो–चार हफ़्ते के लिए अपने खर्च पर गैस पीड़ितों की सेवा के लिए आते रहे। हमारा काम केवल उनके आवास और भोजन का इंतज़ाम करना था। कुल मिलाकर ऐसे लगभग 20 डॉक्टर केवल कोलकाता से भोपाल में काम करने समय–समय पर आए होंगे। इसके अलावा देश के अन्य इलाकों से भी आए।

जन स्वास्थ्य केंद्र को थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी प्रो. हीरेश चंद्र ने ली और उन्हीं की मदद से पेशाब में थायोसायनेट की विधिवत जांच संभव हुई। देखते–देखते इलाके में जन स्वास्थ्य केंद्र में लगाया जानेवाला 'गैस का इंजेक्शन' लोकप्रिय हो गया। जन स्वास्थ्य केंद्र ने व्यवस्थित ढंग से गैस पीड़ितों को थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन से होनेवाले लाक्षणिक लाभों और उनके पेशाब में थायोसायनेट के आंकड़ों को दर्ज किया। समय–समय पर इसकी जानकारी प्रेस विज्ञप्तियों के जरिए सार्वजनिक भी की। इस जनविज्ञानी रवैय्ये और बढ़ती हुई जनचेतना से सरकार और कार्बाइड दोनों घबड़ा गए।

गौरतलब है कि 24 जून 1985 की आधी रात को जन स्वास्थ्य केंद्र पर पुलिस ने हमला किया। वहां मौजूद डॉक्टरों और स्वास्थ्यकर्मियों को गिरफ्तार कर लिया और

सभी उपकरण व मेडिकल रिकार्ड थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन समेत जब्त कर लिए। ऐसा करने के लिए पुलिस के पास कोई वारंट भी नहीं था। कुछ डॉक्टरों को रात में ही उनके घरों में जाकर गिरफ़्तार किया। डॉक्टरों को कोतवाली में जमकर परेशान किया गया और उनसे इस लहजे में पूछताछ की गई जैसे कि वे किसी दुश्मन देश के जासूस हों। कुछ को जेल भी भेजा। देशभर में इस हमले की व्यापक भर्त्सना हुई। कई अखबारों ने इसके खिलाफ संपादकीय जारी किए। लेकिन सरकार को कोई फर्क नहीं पड़ा। जाहिर है यह अमानवीय, संविधान–विरोधी और गैर–लोकतांत्रिक कदम सरकार ने कार्बाइड के इशारे पर ही उठाया होगा।

जब यह घटना घटी तब जन स्वास्थ्य केंद्र का प्रभार मुंबई से आए डॉ. निशिथ वोरा संभाल रहे थे। बाद में डॉ. निशिथ वोरा ने इस मामले पर सुप्रीम कोर्ट में जनहित याचिका दायर की। थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन और अन्य प्रकार के इलाज के संदर्भ में दायर की गई यह याचिका सुप्रीम कोर्ट में मुआवजे का मामला पहुंचने के लगभग तीन साल पहले पहुंच चुकी थी। अगस्त 1985 में हुई उसकी पहली सुनवाई में ही सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार को थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन सहित सभी उपकरण और मेडिकल रिकार्ड वापिस करने और इंजेक्शन की पूर्ति जारी रखने का आदेश दिया। राज्य सरकार ने मजबूरन उपकरण और इंजेक्शन तो वापिस किए और थायोसल्फ़ेट की पूर्ति भी शुरू कर दी लेकिन मेडिकल रिकार्ड वापस नहीं किए। सरकार जानती थी कि ये मेडिकल रिकार्ड मुआवजे के मामले में कार्बाइड के खिलाफ इस्तेमाल किए जा सकते हैं, इसलिए इन्हें दबा लेना ही बेहतर समझा।

उक्त याचिका की सुनवाई के दौरान थायोसल्फ़ेट इंजेक्शन के अलावा इलाज और पुनर्वास के सभी मुद्दे खुल गए। केंद्र और राज्य सरकार दोनों बचाव की मुद्रा में आ गए। उनके शपथ पत्रों में इलाज, पुनर्वास और मेडिकल दस्तावेजीकरण के मामलों में बरती गई लापरवाही साफतौर पर झलक रही थी। भोपाल का सवाल सुप्रीम कोर्ट की मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में गठित पीठ के सामने एक पहेली बनता जा रहा था। इस हालात से उबरने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने एक विशेषज्ञ समिति गठित करने का फैसला लिया। जिसकी कहानी अगले खंड में पेश है।

सुप्रीम कोर्ट की विशेषज्ञ समिति – विज्ञान और जनहित की कसौटी पर

सुप्रीम कोर्ट द्वारा नवंबर 1985 गठित विशेषज्ञ समिति में 7 सदस्य थे – दो प्रतिनिधि आई.सी.एम.आर. से, दो प्रतिनिधि म.प्र. सरकार के स्वास्थ्य विभाग से। साथ में म.प्र. सरकार की मेडिको लीगल इंस्टीट्यूट के विख्यात विषविज्ञानी डॉ. हीरेश चंद्र भी थे। इनके अलावा दो गैर–सरकारी सदस्य थे। मुझे याचिकाकर्ता 'डॉ. निशिथ वोरा एवं अन्य' के संगठन यानी 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा' एवं उसके द्वारा संचालित 'जन स्वास्थ्य केंद्र' के प्रतिनिधि बतौर मनोनीत किया गया। डॉ. सुजीत कुमार दास को पश्चिम बंगाल ड्रग एक्शन फोरम, कोलकाता के प्रतिनिधि के रूप में इसलिए मनोनीत किया गया चूंकि उनके संगठन ने 'जन स्वास्थ्य केंद्र' के जरिए भोपाल में जून 1985 से लेकर जून 1986 तक लगातार कोलकाता से स्वयंसेवी डॉक्टर भेजकर और मेडिकल सलाह देकर गैस पीड़ितों के इलाज में उल्लेखनीय योगदान दिया था।

आई.सी.एम.आर. ने अपने अतिरिक्त महानिदेशक डॉ. एस. श्रीरामाचारी को मनोनीत किया। इस प्रकार डॉ. हीरेश चंद्र और डॉ. श्रीरामाचारी दोनों की मौजूदगी के चलते विशेषज्ञ समिति को ऐसे सदस्य मिल गए जिन्होंने सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन की निर्विषीकरण (शरीर से जहर बाहर निकालना) में कारगरता स्थापित करने एवं पेशाबीय थायोसायनेट को इलाज व मुआवजे दोनों का पुख्ता आधार बनाने में बुनियादी योगदान दिया था।

सुप्रीम कोर्ट ने समिति को जो काम दिए थे उनमें गैस पीड़ितों का निर्विषीकरण करने के लिए सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन व्यापक तौर पर देने के उपाय सुझाना, इपिडीमियालॉजी (बीमारी के उद्गम, फैलाव और प्रभाव संबंधित) अध्ययन और इलाज व मुआवजे की दृष्टि से सर्वेक्षण आयोजित करने जैसे काम थे। लेकिन जल्द ही एक तरफ पांच सरकारी सदस्यों और दूसरी तरफ हम दोनों गैर–सरकारी सदस्यों के बीच हमारी पारदर्शी कार्यशैली, जानकारी सार्वजनिक करने एवं समिति के उद्देश्य, भूमिका व काम के प्रति जनवादी समझ को लेकर भारी मतभेद उभर आए। समिति के सरकारी सदस्यों ने सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन के मसले पर सरकारी प्रयास के प्रति संतोष व्यक्त करते हुए महज डेढ़ पृष्ठ की ढुलमुल रिपोर्ट पेश करके अपने काम की इतिश्री समझ ली। इससे भी बड़ी विडंबना तो यह थी कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए

अन्य कामों को करने से इंकार करते हुए उन्होंने दर्ज किया कि वे "ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों की अपेक्षाओं के अनुसार जिम्मेदारी उठा सकें (13–14 दिसंबर 1986)।" यह दर्ज करनेवालों में आई.सी.एम.आर. के अतिरिक्त महानिदेशक और राज्य सरकार के मेडिकल सेवाओं के निदेशक भी शामिल थे! इसके ठीक विपरीत हम दोनों अल्पमत सदस्यों का मत था कि समिति को "सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों में उल्लेखित सभी मुद्दों पर काम करना चाहिए (13–14 दिसंबर 1986)।"

अंततः हमारे पास क्या चारा बचा था? हम दोनों ने अलग से सन् 1987–88 के दौरान तीन अल्पमत रिपोर्टें पेश कीं – पहली प्रारंभिक रिपोर्ट (22 पृष्ठ, 8 परिशिष्ट) सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शनों की निर्विषीकरण में उपयोगिता स्थापित करने हेतु जहरीली गैसों के संदर्भ में विषविज्ञानी (टॉक्सीकॉलॉजिकल) नजरिया अपनाने एवं गैस के कारण पेशाब में थायोसायनेट की मात्रा बढ़ने के सवाल पर थी जो मुआवजे के दावे का एक पुख्ता वैज्ञानिक आधार देता था। दूसरी अंतरिम रिपोर्ट (232 पृष्ठ, 5 रेखाचित्र, 11 तालिकाएं, 49 परिशिष्ट) में गैस में मौजूद 'मिक' और अन्य जहरीले रसायनों के शरीर में लंबे अर्से तक टिके रहने का विषविज्ञानी सबूत व इलाज का नजरिया पेश किया गया। इसके चलते बहुतंत्रीय बीमारियों (महिलाओं में गर्भपात की दर बढ़ने और प्रजनन स्वास्थ्य पर असर समेत) और आनुवांशिक अपंगता, भ्रूण में विकृतियों एवं कैंसर–जन्य संभावनाओं के प्रति सचेत किया तथा सोडियम थायोसल्फेट इंजेक्शन देने व पेशाबीय थायोसायनेट की विधिवत जांच करने में सरकार द्वारा बरती गई कोताही की आंकड़ों के आधार पर कड़ी आलोचना की। साथ में मुआवजे के लिए पेशाबीय थायोसायनेट और अन्य मेडिकल आंकड़ों के वैज्ञानिक रिकार्ड रखने की अनुशंसा की। तीसरी व अंतिम रिपोर्ट (41 पृष्ठ, 3 परिशिष्ट) में इलाज, पुनर्वास (घटी हुई कार्यक्षमता पर आधारित रोजगार समेत), दस्तावेजीकरण, निगरानी,, जानकारी की पारदर्शिता, मुआवजे का पुख्ता आधार खड़ा करना आदि मसलों पर व्यापक अनुशंसाएं करते हुए एक उच्च–स्तरीय 'भोपाल गैस पीड़ित राष्ट्रीय मेडिकल एवं पुनर्वास आयोग' का प्रस्ताव दिया। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने इन महत्वपूर्ण अनुशंसाओं पर कोई भी कार्रवाई नहीं की। आखिर, क्यों नहीं? सुप्रीम कोर्ट को मुआवजे का मामला उनके पास आने के पहले ही यह लकवा क्यों लग गया?

बाद में जब मुआवजे का मामला जबलपुर हाईकोर्ट होते हुए सुप्रीम कोर्ट पहुंचा तो केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार मुआवजे के आकार का अनुमान लगाने के लिए कोई विश्वसनीय आंकड़े पेश नहीं कर पाईं। इसके परिणामस्वरूप यूनियन कार्बाइड का पलड़ा भारी हो गया। अंततः सरकार को कार्बाइड के साथ 14–15 फरवरी 1989 को एक शर्मनाक समझौता करना पड़ा (या खुद की इच्छा से किया?) जिसपर सुप्रीम कोर्ट ने तुरत–फुरत अपनी मुहर लगा दी। इस फैसले का देशभर में तीखा विरोध हुआ।

सुप्रीम कोर्ट की उपरोक्त विशेषज्ञ समिति के हम दोनों अल्पमत सदस्यों के विचार में यदि हमारी तीन वैज्ञानिक रिपोर्टों (क्रमशः अक्तूबर 1987, मई 1988 एवं अगस्त 1988) में की गई बहुआयामी अनुशंसाओं पर सही समय पर ठोस कदम उठाए गए होते तो आज गैस पीड़ितों का पलड़ा यूनियन कार्बाइड (या डाऊ केमिकल) की तुलना में कहीं अधिक भारी होता। उस स्थिति में गैस पीड़ितों का न केवल कारगर इलाज और पुनर्वास हो पाता वरन् साथ में यूनियन कार्बाइड से दंडात्मक हर्जाने सहित पूरा क्षतिपूर्ति हर्जाना लेना मुमकिन हो जाता। **हमारे लिए यह भारी क्षोभ का विषय है कि देश में मौजूद विशाल वैज्ञानिक तंत्र और काबिल वैज्ञानिकों के बावजूद हम हत्यारी कार्बाइड के खिलाफ वैज्ञानिक सबूत नहीं जुटा पाए। वैज्ञानिक तंत्र की यह अजीबोगरीब 'लाचारी' भोपाल का दूसरा बड़ा हादसा है। इस तरह भारत ने दुनिया के सामने कॉरपोरेट पूंजी को सबक सिखाने का एक ऐतिहासिक मौका खो दिया।**

सुप्रीम कोर्ट कटघरे में – पूंजीवादी अर्थतंत्र के सामने आत्मसमर्पण

यह खंड **12 मार्च 1989** को पश्चिम बंगाल ड्रग एक्शन फोरम, कोलकाता के डॉ. सुजीत कुमार दास और मेरे द्वारा संयुक्त रूप से लिखा गया था। हम दोनों सुप्रीम कोर्ट द्वारा नवंबर 1985 में गठित 7–सदस्यीय विशेषज्ञ समिति के गैर–सरकारी सदस्य थे। सुप्रीम कोर्ट की उक्त समिति में हम दोनों के अलावा पांच सदस्य केंद्रीय और राज्य सरकारों के थे। हम दोनों गैर–सरकारी सदस्यों ने अलग से सन् 1987–88 के दौरान तीन अल्पमत रिपोर्टें पेश कीं। अल्पमत रिपोर्टें लिखने के कारणों एवं उनमें की गई अनुशंसाओं का विवरण पिछले खंड में दिया गया है। हमारा मानना है कि अल्पमत रिपोर्टों में की गई अनुशंसाओं को नजरंदाज़ करके सुप्रीम कोर्ट ने न केवल इलाज, पुनर्वास, मेडिकल दस्तावेजीकरण और विषविज्ञानी नजरिया अपनाने के मुद्दों को हाशिए पर पहुंचा दिया वरन् मेडिकल आंकड़ों और मुआवजे के बीच के जरूरी रिश्ते को भी स्थापित नहीं होने दिया। जाहिर है कि भारत की न्यायिक प्रणाली कॉरपोरेट पूंजी के कानूनी दायित्व और क्षतिपूर्ति हर्जाने के साथ–साथ दंडात्मक हर्जाने के दो महत्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित करने की हिम्मत नहीं जुटा पाई। पूंजीवादी अर्थतंत्र के सामने इस तरह आत्मसमर्पण करके भारत का सुप्रीम कोर्ट पूरी तीसरी *दुनिया के लिए एक प्रेरणादायक मिसाल पेश करने का मौका चूक गया।*

इस सरोकार, क्षोभ एवं गहरी पीड़ा के साथ हम दोनों ने सुप्रीम कोर्ट के साथ हुए अपने अनुभवों और विश्लेषण को **यहां ठीक उन्हीं शब्दों में पेश किया है जिनमें हमने इन्हें फरवरी 1989 में भारत सरकार द्वारा कार्बाइड के सामने घुटने टेकने के एक माह के अंदर लिख दिया था।**

– 28 नवंबर 2009 / भोपाल

फरवरी 1989 में भारत के सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए शर्मनाक फैसले के बाद अब यूनियन कार्बाइड पूरे विश्वास के साथ दुनियाभर में और विशेषकर तीसरी दुनिया के देशों में लोगों को मारने और अपंग बनाने का अपना कार्यक्रम जारी रख सकती है। केवल यूनियन कार्बाइड ही क्यों? यही बात अन्य अमरीकी व यूरोपीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भी सच क्यों नहीं होगी? ये कंपनियां अब सुरक्षा के उपायों पर कम–से–कम खर्च करके मानव जीवन के लिए खतरनाक रसायनों के उत्पादन में धड़ल्ले से अंधाधुंध मुनाफाखोरी कर सकती हैं।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा भोपाल गैस पीड़ितों के मुआवजे के बारे में दिए गए इस फैसले के कुछ ही घंटों के अंदर सभी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को नया जीवन मिल गया। सबूत सबके सामने है। इस फैसले के तुरंत बाद न्यूयार्क शेयर बाजार में कार्बाइड के शेयरों की कीमत दो डालर प्रति शेयर बढ़ गई। फैसले के दिन यूनियन कार्बाइड के 64 लाख शेयरों का आदान–प्रदान हुआ, जो उस दिन की सबसे बड़ी संख्या थी। कंपनी ने बताया कि इस समझौते से सन् 1988 के मुनाफे में से प्रत्येक शेयर के पीछे मात्र 50 सेंट की कटौती होगी यानी प्रत्येक शेयर पर 1.59 डालर की जगह 1.09 डालर का भुगतान करने से काम चल जाएगा।

यूनियन कार्बाइड के अध्यक्ष रॉबर्ट कैनेडी ने कोर्ट के फैसले पर अपनी खुशी व्यक्त की। निःसंदेह, यह एक अजीबोगरीब प्रतिक्रिया थी चूंकि फैसले का मकसद तो उनकी कंपनी को दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक त्रासदी में 3,500 लोगों की हत्या करने और 3 लाख से भी अधिक लोगों को अन्यान्य प्रकार से बीमार बना देने के लिए दंडित करना था।

फैसले के अगले दिन अमरीकी व्यापार की नब्ज़ पर पकड़ रखनेवाले जाने–माने 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' नामक अखबार ने उपरोक्त स्थिति को इस तरह पेश किया –

> *"इस समझौते ने कार्बाइड के ऊपर से एक बड़ा बोझ हटा दिया है, जिसके कारण कंपनी की ऊर्जा नष्ट हो रही थी। कार्बाइड के प्रबंधक अब अपना ध्यान व्यापार की नई रणनीतियों और अपने* ***प्रमुख रासायनिक उत्पादों के लिए तेजी से बढ़ती हुई मांगों को पूरा करने हेतु बाजार*** *विकसित करने पर केंद्रित कर सकते हैं।"*

कार्बाइड के सामने आत्मसमर्पण

सुप्रीम कोर्ट के 14 व 15 फरवरी 1989 के आदेशों का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि यूनियन कार्बाइड को दिए गए इस बहुप्रतिक्षित 'दंड' के बाद नरसंहार करनेवाली कंपनी की धमनियों में नया खून क्यों दौड़ने लगा है। मुख्य न्यायाधीश श्री रघुनंदनस्वरूप पाठक की अध्यक्षता में गठित पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक खंडपीठ के दो आदेशों के फलस्वरूप यूनियन कार्बाइड को मात्र 47 करोड़ डालर (रुपए 715 करोड़) दे देने से न्याय के शिंकजे से पूरी छूट मिल गई। इस प्रकार यूनियन

कार्बाइड को समस्त दायित्व व अपराध से बरी करके पूंजीवादी समाज में इंसान की जिंदगी की कीमत कुछ पैसों से लगा देने के सिद्धांत की न्यायपालिका ने भी पुष्टि कर दी। सुप्रीम कोर्ट के फैसले से देश भर में आक्रोश व विरोध प्रदर्शनों की जो लहर सी फैली है उसका एकमात्र कारण मुआवजे की राशि का कम होना ही नहीं माना जा सकता। दरअसल, दोनों आदेशों में जो समझौते बतौर शर्तें व प्रावधान शामिल कर दिए गए हैं उनके कारण अनेक वरिष्ठ सांसदों ने भोपाल समझौते को 'बहुराष्ट्रीय कंपनी के सामने आत्मसमर्पण' और 'भोपाल की जनता के साथ विश्वासघात' कहा है। वे शर्तें और प्रावधान क्या हैं (इनका ब्यौरा आगे दिया गया है) जिनके कारण एक राष्ट्रीय अखबार को अपने संपादकीय में फैसले को 'न्यायिक आत्मसमर्पण' और दिल्ली विश्वविद्यालय के कानून के एक विख्यात प्रोफेसर द्वारा इसे 'त्रासदायक फैसला' कहने के लिए बाध्य होना पड़ा? सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले से न्याय को सबसे बड़ा धक्का इस बात से लगा है कि भारत सरकार अपराधी बहुराष्ट्रीय कंपनी के खिलाफ चल रही कानूनी प्रक्रिया को बीच में ही रोककर और उसका कानूनी दायित्व तय किए बगैर ही मुकदमे का अचानक पटाक्षेप करने के लिए तैयार हो गई।

क्षेत्राधिकार व कानूनी दायित्व का सवाल

नवंबर 1987 में भी जब भारत सरकार कार्बाइड के साथ 60 करोड़ डालर की राशि पर समझौता करने के लिए लगभग तैयार हो गई थी, उस समय न्यायमूर्ति श्री वी. आर. कृष्णा अय्यर और प्रो. उपेंद्र बख्शी जैसे प्रख्यात कानूनविदों ने सरकार को याद दिलाया था कि **यह मुकदमा महज चंद डालरों के लिए नहीं है, वरन् अंतर्राष्ट्रीय न्याय–प्रक्रिया के तहत देश को एक बहुत बड़ी चुनौती है**। तीसरी दुनिया के तमाम देशों की नजरें **शुरू से ही भारत पर टिकी हुई थीं ताकि एक गरीब देश के कोर्ट में किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी को दंडित करने और उससे मुआवजा प्राप्त करने के लिए क्षेत्राधिकार का ऐतिहासिक सिद्धांत प्रतिपादित हो सके**। आखिर, इसीलिए तो भारत सरकार ने न्यूयार्क की संघीय जिला अदालत के न्यायाधीश कीनन के आदेशों के तहत भोपाल की जिला अदालत में सितंबर 1986 में यूनियन कार्बाइड के खिलाफ मुकदमा दायर किया था। यदि सरकार को कार्बाइड के साथ डालरों का लेनदेन

करके एक सस्ता आत्मसमर्पण ही करना था तो ऐसा समझौता तो न्यायाधीश कीनन की अदालत में सन् 1985 में ही किया जा सकता था, जहां इसके आसार कई बार दिखे थे। भोपाल की अदालत के कटघरे में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी को खड़ा करने का मतलब ही क्या निकला यदि उसके कानूनी दायित्व को निर्धारित करने की मंशा ही नहीं थी।

14 फरवरी 1989 को भोजन के अवकाश तक सुप्रीम कोर्ट में भारत सरकार के महाधिवक्ता श्री के. पारासरन इस बात पर जिरह कर रहे थे कि अमरीका की यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन भारत में पंजीकृत अपनी मातहत कंपनी यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के भोपाल संयंत्र से हुए गैस रिसन के लिए पूर्णतः जिम्मेदार है। यह केवल इसलिए नहीं कि भारतीय कंपनी में यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन के 50.9 प्रतिशत शेयर हैं, किंतु इसलिए भी चूंकि भोपाल संयंत्र में उपयोग में लाई गई उच्च तकनीक, सुरक्षा के उपाय, प्रबंध की शैली एवं तकनीशियनों के प्रशिक्षण से संबंधित प्रत्येक मामले पर अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनी का पूर्ण नियंत्रण बना हुआ था। इसको सिद्ध करने के लिए भारत सरकार ने पहले न्यायाधीश कीनन की न्यूयार्क अदालत में और बाद में भोपाल की अदालत में सैकड़ों दस्तावेज पेश किए थे जिनका जिक्र 14 फरवरी की सुबह तक कई हफ्तों से चल रही जिरह में सरकार द्वारा किया गया था। तो क्या यह सब महज दिखावा था? इसके अलावा और कोई निष्कर्ष निकल ही नहीं सकता, चूंकि 14 फरवरी की दोपहर भोजन के बाद लौटने पर जब मुख्य न्यायाधीश श्री पाठक ने समझौते का आदेश पढ़कर सुनाया तो महाधिवक्ता श्री पारासरन ने एक बार भी उनसे आग्रह नहीं किया कि यूनियन कार्बाइड के कानूनी दायित्व पर चल रही बहस पर देश की सबसे बड़ी अदालत अपना मत तो कम–से–कम व्यक्त करे।

कोर्ट के इस आदेश को कैसे न्यायपूर्ण मान लिया जाए जिसमें स्पष्ट प्रावधान है कि मुआवजे की राशि का भुगतान हो जाने पर 'भोपाल गैस हादसे से उभरे एवं उससे संबंधित समस्त दावों, अधिकारों और जवाबदेहियों का पूर्ण निपटारा' हो जाएगा। कहीं भूल से भी कोई यूनियन कार्बाइड को अपराधी न मान ले, अतः कोर्ट ने 15 फरवरी के आदेश में यह भी जोड़ दिया कि यह भुगतान 'भोपाल गैस हादसे के सब पीड़ितों के भले के लिए' किया जा रहा है, न कि 'जुर्माने, दंड या दंडात्मक हर्जाने' के रूप

में। इस तरह सुप्रीम कोर्ट ने यूनियन कार्बाइड को इतिहास के भीषणतम औद्योगिक नरसंहार के कानूनी दायित्व से पूर्णतः बरी कर दिया और साथ ही **बहुराष्ट्रीय मुआवजे** की जगह **बहुराष्ट्रीय भीख** प्राप्त करने की कानूनी मिसाल भी स्थापित कर दी।

दंडात्मक हर्जाना

यदि कोर्ट का यह आदेश एक बहुराष्ट्रीय कंपनी से **भीख** नहीं, **मुआवजा** लेने के उद्देश्य से दिया गया होता तो इसमें क्षतिपूर्ति एवं दंडात्मक हर्जाने दोनों का जिक्र जरूर होता। कैरन सिल्कवुड के प्रसिद्ध अमरीकी प्रकरण में इन दोनों प्रकार के हर्जानों को स्पष्ट मान्यता प्राप्त हुई है। कैरन सिल्कवुड परमाणु ईंधन बनानेवाली केर्र–मेकगी नामक अमरीकी कंपनी में कर्मचारी थी। उस कंपनी की लापरवाही से सारी फैक्टरी में रेडियोधर्मी प्रदूषण फैल गया, लेकिन इस तथ्य को मालिकों ने छिपाकर रखा। अंततः कैरन भी विकीरणशीलता से प्रभावित हुई और उसे कैंसर व अन्य जघन्य बीमारियों के हो जाने की आशंका के साथ जीना पड़ा। कैरन की मृत्यु के बाद अमरीकी अदालत ने कंपनी को दोषी पाते हुए फैसला दिया कि कैरन के परिवार को 5 लाख डालर क्षतिपूर्ति हर्जाने के रूप में और 1 करोड़ 5 लाख डालर दंडात्मक हर्जाने (क्षतिपूर्ति हर्जाने का 21 गुना) के रूप में दिए जाएं। अदालत ने घोषित किया कि कंपनी ने न केवल उत्पादन में लापरवाही बरती और जानकारी छिपाई पर साथ ही कैरन को बीमारियों की आशंका के कारण मानसिक प्रताड़ना का भी शिकार होना पड़ा। इस मामले की तुलना में तो यूनियन कार्बाइड का दोष कई गुना अधिक है। कार्बाइड न केवल सुरक्षा के अपर्याप्त उपाय करने के लिए दोषी है बल्कि इसके प्रमाण भी मौजूद हैं कि कंपनी ने भोपाल संयंत्र के प्रबंध व प्रशिक्षण में गिरावट आने दी जिससे यह हादसा संभव हुआ। कार्बाइड की लापरवाही का अंत यहीं नहीं होता। मिथाइल आइसोसायनेट ('मिक') जैसे जहरीले रसायन के स्वास्थ्य पर होनेवाले असरों और उनके इलाज की जानकारी भी छिपाकर रखी। हादसे के बाद कार्बाइड ने जानबूझकर 'मिक' गैस और अन्य जहरीले रसायनों के स्वास्थ्य पर होनेवाले प्रभावों के बारे में भ्रामक प्रचार किया और इस तरह स्थानीय अधिकारियों व डॉक्टरों को इलाज के बारे में धोखे में रखा। जन स्वास्थ्य केंद्र के डॉ. निशिथ वोरा

व अन्य के द्वारा सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका के सिलसिले में गठित सुप्रीम कोर्ट विशेषज्ञ समिति के हम दो अल्पमत सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट में कार्बाइड के द्वारा फैलाई गई भ्रामक जानकारी का विस्तृत ब्यौरा पेश किया है। इस अल्पमत रिपोर्ट में की गई सिफारिश को स्वीकारते हुए अक्तूबर 1988 में सुप्रीम कोर्ट ने यूनियन कार्बाइड को आदेश दिया कि वह 'मिक' व अन्य जहरीले रसायनों के बारे में पूर्ण विषविज्ञानी (टाक्सीकॉलॉजिकल) जानकारी पेश करे। कार्बाइड द्वारा नवंबर 1988 में कोर्ट को प्रस्तुत शपथ पत्रों से स्पष्टतः सिद्ध होता है कि कार्बाइड ने बिना पर्याप्त ज्ञान के बरसों तक भोपाल में 'मिक' का उत्पादन किया और इस प्रकार इंसानों की ज़िंदगी के साथ खिलवाड़ किया। सुप्रीम कोर्ट को दी गई हमारी अल्पमत रिपोर्ट में हजारों गैस पीड़ितों पर गैस से हुए मनोवैज्ञानिक प्रभावों व भावनात्मक क्षति के वैज्ञानिक प्रमाणों का भी जिक्र है। ये सारे तथ्य सुप्रीम कोर्ट को उपलब्ध हैं।

तब फिर क्या कारण है कि मुआवजे के बारे में न्याय देते हुए कोर्ट ने दंडात्मक हर्जाने के मुद्दे पर चुप्पी साध ली। केवल यही नहीं, भारत सरकार ने भी भोपाल अदालत में दायर मुकदमे में 330 करोड़ डालर (लगभग 50 अरब रुपए) के मुआवजे की मांग के अलावा भावनात्मक क्षति की भरपाई और दंडात्मक हर्जाने की मांग भी की थी। तो फिर क्या महाधिवक्ता श्री पारासरन का यह कर्तव्य नहीं था कि 14 फरवरी की दोपहर को वे गैस पीड़ितों के हित में कोर्ट को इस न्यायोचित मांग की याद दिलाते। लेकिन उन्होंने भी फैसले की घोषणा को बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लिया।

दंडात्मक हर्जाने की राशि क्या होगी, यह चाहे भोपाल अदालत में तय होता लेकिन सुप्रीम कोर्ट से यह अपेक्षा तो की जा सकती है कि अंतरिम मुआवजे की अपील सुनते हुए वह क्षतिपूर्ति व दंडात्मक हर्जाने के बारे में अपना सैद्धांतिक मत जरूर जाहिर करे। यह न करके कोर्ट ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को दंडित करने की कानूनी मिसाल बनाने का एक ऐतिहासिक मौका खो दिया। इससे तीसरी दुनिया की संघर्षशील जनता को निःसंदेह जबरदस्त निराशा हुई होगी।

अपराधिक प्रकरण खारिज

सुप्रीम कोर्ट के आदेश में यह भी प्रावधान है कि 'इस हादसे से उभरनेवाले और संबंधित सभी प्रकरण जहां भी लंबित हों, वहीं खारिज कर दिए जाएं'। सुप्रीम कोर्ट के सामने जबलपुर हाइकोर्ट के अंतरिम मुआवजे वाले आदेश की अपील बतौर आए प्रकरण में यूनियन कार्बाइड के अधिकारियों के खिलाफ भोपाल अदालत में चल रहे प्रकरणों को भी खारिज करने का सवाल उठा ही क्यों, यह समझ से परे है। सुप्रीम कोर्ट के पास ऐसा करने का अधिकार भी शायद नहीं था चूंकि कोर्ट का क्षेत्राधिकार केवल उन्हीं मामलों में होता है जो उसके सामने लाए जाते हैं। कानूनविदों का मत है कि अपराधिक प्रकरण खारिज करके सुप्रीम कोर्ट ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है। ऐसा ही मत सुप्रीम कोर्ट के सात न्यायाधीशों ने पिछले साल अंतुले प्रकरण के सिलसिले में दिया था और यह माना था कि निचली अदालतों में चल रहे प्रकरणों के बारे में बिना क्षेत्राधिकार स्थापित हुए देश की सबसे बड़ी अदालत भी आदेश पारित नहीं सकती। भोपाल के गैस पीड़ित कानून की इन पेचीदगियों से नावाकिफ हो सकते हैं, पर उन्होंने यह जरूर समझ लिया होगा कि इस समझौते के लिए न्याय प्रक्रिया का बलिदान हुआ है। इसीलिए फैसले के अगले ही दिन सैकड़ों गैस पीड़ित महिलाओं द्वारा भोपाल के राजभवन के बाहर किए गए विरोध प्रदर्शन में ये नारे लगाए गए कि,

'प्रधानमंत्री के हत्यारों को फांसी मिली, हमारे हत्यारों को बरी कर दिया'।

कार्बाइड की भावी वकील – भारत सरकार!

सुप्रीम कोर्ट के आदेश की एक और शर्त काबिलेगौर है जिस पर अभी तक देश का ध्यान नहीं गया है। इसके तहत भारत और मध्य प्रदेश शासन ने यह जिम्मेदारी ली है कि यदि यूनियन कार्बाइड या इसके किसी भी अधिकारी के खिलाफ भविष्य में कोई भी मुकदमा – दावा, दीवानी या अपराधिक प्रकरण – दायर किया जाता है तो वे उनके पक्ष में खड़े होंगे। अब आप कल्पना कीजिए उस परिस्थिति की जब कोई गैस पीड़ित भविष्य में होनेवाली किसी बीमारी के लिए मुआवजा प्राप्त करने हेतु कार्बाइड के विरूद्ध भारत या अमरीका में नालिश करता है तो कार्बाइड को बचाने के लिए गैस पीड़ित के खिलाफ भारत सरकार अपने महाधिवक्ता श्री पारासरन साहब

को भेजेगी। **इस हद तक का आत्मसमर्पण राजाओं और नवाबों ने भी ईस्ट इंडिया कंपनी के सामने नहीं किया था।**

गैस पीड़ितों के भावी हक भी छिने

इस फैसले का यह भी असर होगा कि यदि भविष्य में कोई भी गैस पीड़ित गैस से पैदा होनेवाली आनुवांशिक (वंशानुगत), भ्रूण पर असर डालनेवाली, कैंसर–जन्य बीमारी, प्रतिरोधक क्षमता क्षीण पड़ने या प्रजनन शक्ति घट जाने के सिलसिले में यूनियन कार्बाइड के खिलाफ क्षतिपूर्ति का मुकदमा दायर करता है तो उसे भी इसी समझौते के तहत पहले से ही निपटाया हुआ माना जाएगा। फैसले का यह प्रावधान क्या भारतीय संविधान के तहत प्रत्येक नागरिक को प्राप्त सुरक्षित जीवन जीने के बुनियादी हक का उल्लंघन नहीं करता? सुप्रीम कोर्ट विशेषज्ञ कमेटी के हम दो अल्पमत सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट में भोपाल संयंत्र से निकली जहरीली गैसों व उनसे उत्पन्न रसायनों के शरीर में टिके रहने और उनके द्वारा संभावित दीर्घकालीन बीमारियों के बारे में वैज्ञानिक प्रमाण पेश किए हैं। उसी याचिका में हस्तक्षेपकर्ता 'नो मोर भोपाल कमेटी' (कोलकाता) ने सुप्रीम कोर्ट के सामने ग्वालियर स्थित भारत सरकार के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान द्वारा किए गए शोध के वे परिणाम भी रखे हैं जिनसे पता चलता है कि 'मिक' गैस आनुवांशिक उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) पैदा कर सकती है, जिसका असर अगली पीढ़ी में ही दिखेगा। इस सामग्री के सामने होने के बावजूद सुप्रीम कोर्ट ने गैस पीड़ितों के द्वारा भावी कार्यवाही करने के अधिकार भी कैसे छीन लिए, यह अचरज की बात है।

मुआवजे का आधार कहां ?

अब लौटकर आइए 47 करोड़ डालर की राशि पर। यह सवाल सब गैस पीड़ितों के मन में है कि आखिर सुप्रीम कोर्ट के पास यह राशि तय करने का आधार क्या था। क्या यह राशि मौतों, बीमारियों या अपंगता के कारण हुई आर्थिक क्षति की भरपाई करने के लिए पर्याप्त होगी? मुआवजे से केवल आर्थिक भरपाई ही नहीं होनी है। यह मुआवजा पर्याप्त तभी माना जा सकता है जब भरपाई के बाद यह 3 लाख से अधिक लोगों के दीर्घकालीन इलाज एवं पुनर्वास के लिए यथेष्ट हो और इसकी मदद से

कम–से–कम एक लाख लोगों को उनकी घटी हुई कार्यक्षमता के अनुसार वैकल्पिक रोजगार दिलवाया जा सके व आवासीय स्थितियां व पर्यावरण बेहतर बनाए जा सकें। इसके अलावा यह राशि भोपाल के पर्यावरण, व्यापार, पशुओं एवं फसलों को हुए नुकसान की भरपाई के लिए भी पर्याप्त होनी चाहिए। यह साफ है कि ऐसा कोई वैज्ञानिक या वस्तुपरक आधार सुप्रीम कोर्ट के पास नहीं था। सच्चाई तो यह है कि जुलाई 1987 में भोपाल जिला न्यायाधीश श्री एम. डब्ल्यू. देव ने भी भारत सरकार को निर्देशित किया था कि वह मौतों व बीमारियों और आर्थिक व पर्यावरणीय नुकसान के आंकड़े पेश करे ताकि मुकदमे का न्यायोचित आधार बन सके। ऐसे कोई मेडिकल रिकार्ड या अन्य सर्वे रिपोर्ट सरकार ने आज तक अदालत के सामने नहीं रखी है।

मुआवजे की कमजोर लड़ाई

उपलब्ध जानकारी से साफ है कि सरकार ने मुआवजे का आधार न बनाने और इस तरह मुकदमे को कमजोर कर देने का फैसला गैस रिसन के कुछ हफ्तों बाद ही कर लिया था। शुरू से ही यह दिखा कि राज्य शासन का स्वास्थ्य तंत्र और भारत सरकार की ओर से आई.सी.एम.आर. ने मौतों व बीमारियों के रिकार्ड इस प्रकार रखे कि यूनियन कार्बाइड की जवाबदेही कम–से–कम हो जाए। एक लंबे अर्से तक सरकारी डॉक्टर व वैज्ञानिक कार्बाइड के भ्रामक मेडिकल प्रचार को समर्थन देते रहे कि 'मिक' गैस का असर केवल आंखों व फेफड़ों की सतहों पर ही है और यह खून में प्रवेश नहीं कर सकता। गैस पीड़ित संगठनों (खासकर 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा') एवं स्वैच्छिक समूहों (खासकर मेडिको फ्रेंड्स सर्किल) के द्वारा बार–बार प्रमाण पेश किए जाने के बावजूद लगभग एक साल तक सरकारी वैज्ञानिक व्यवस्था 'मिक' गैस व अन्य जहरों द्वारा शरीर पर हुए बहुतंत्रीय प्रभावों को झुठलाती रही और स्वतः गर्भपात की बढ़ी हुई दर एवं महिलाओं के प्रजनन अंगों को हुए भारी नुकसान को भी नजरंदाज करती रही। फरवरी 1985 में आई.सी.एम.आर. की अपनी खोजों के ही फलस्वरूप गैस पीड़ित आबादी और प्रभावित क्षेत्र को निर्धारित करने के लिए दो प्रमुख वैज्ञानिक औजार मिले। पहला, पीड़ितों के खून में हीमोग्लोबिन और 'मिक' की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न कार्बामायलेटेड हीमोग्लोबिन के रूप में। दूसरा, पीड़ितों के पेशाब में थायोसायनेट नामक रसायन (सायनाइड जहर या उससे मिलते–जुलते

किसी अन्य रसायन का बदला हुआ स्वरूप) की बढ़ी हुई मात्रा के रूप में। इन दोनों रासायनिक औजारों के उपयोग से गैस पीड़ित आबादी का विस्तृत नक्शा बनाया जा सकता था जिसमें बस्तीवार पीड़ितों की अनुमानित संख्या दिखाई जा सकती थी। इससे यूनियन कार्बाइड की जवाबदेही का आकार तय करने के लिए अकाट्य प्रमाण तैयार होता और साथ–साथ मुआवजा व अन्य राहत के वितरण के लिए भी वैज्ञानिक आधार बनता। इन दोनों मसलों पर आई.सी.एम.आर. व राज्य शासन के चिकित्सा तंत्र ने जिस बेमानी, लापरवाही और गैर–वैज्ञानिक पद्धति से काम किया है उससे यह प्रश्न तो उठना स्वाभाविक ही है कि शासकीय वैज्ञानिक एजेंसियों की भूमिका पीड़ितों के पक्ष में थी या कार्बाइड के?

इसी तरह की अजीबोगरीब कहानी आई.सी.एम.आर. के इपीडिमियालॉजी अध्ययन और राज्य शासन के मेडिकल दस्तावेजीकरण की है। सुप्रीम कोर्ट विशेषज्ञ कमेटी के अल्पमत सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट में यह प्रमाणित किया है कि ये दोनों काम जिस तरह से किए गए उससे मौतों व बीमारियों का आकलन सच्चाई से कहीं कम करके हुआ है। इपीडिमियालॉजी अध्ययन में तो भोपाल के नक्शे पर पूर्णतः मनमाने ढंग से कुछ बस्तियों को एक गोले में घेरकर गैस प्रभावित घोषित कर दिया गया। यह बताने को कोई तैयार नहीं है कि भोपाल की अन्य गैस प्रभावित बस्तियां इस घेरे के बाहर क्यों छोड़ दी गईं। महिलाओं के प्रजनन अंगों को हुए नुकसान और पीड़ितों की घटी हुई कार्यक्षमता जैसे मुद्दों को तो इपीडिमियालॉजी अध्ययन में शामिल करना भी उचित नहीं समझा गया। सरकार का कहना है कि अब वह मुआवजे के वितरण के लिए इपीडिमियालॉजी अध्ययन को नहीं, बल्कि मेडिकल दस्तावेजीकरण को आधार बनाएगी। यह कैसे होगा, समझ में नहीं आता। एक ओर तो, मेडिकल दस्तावेजीकरण कार्यक्रम को गैस रिसन के ढाई साल बाद शुरू किया गया जिससे हजारों पीड़ितों की बीमारियों के सही रिकार्ड अब कभी भी नहीं बन पाएंगे चूंकि या तो वे ठीक हो गए हैं या उनकी बीमारियां समय बीतने पर कुछ हद तक कम हो गई हैं। दूसरी ओर, आज भी दस्तावेजीकरण में कई महत्वपूर्ण जांचों को शामिल नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, फेफड़ों को हुए नुकसान को नापने के लिए 'पल्मोनरी फंक्शन टेस्ट' और घटी हुई कार्यक्षमता को नापने के लिए 'एक्सरसाईज़ टालरेंस टेस्ट' को बिना किए ही दस्तावेजीकरण को पूर्ण मान लिया जाता है। इस अपूर्ण व

लापरवाही से किए गए दस्तावेजीकरण के आधार पर सरकार ने कोर्ट को बताया है कि भोपाल में महज 30–40 हजार लोग स्थायी रूप से अपंग हुए हैं। स्वैच्छिक समूहों द्वारा उपलब्ध की गई जानकारी के अनुसार यह संख्या सच्चाई से कहीं कम है।

मेडिकल रिकार्ड और मुआवजा

जन स्वास्थ्य केंद्र के डॉ. निशिथ वोरा व अन्य की याचिका के तहत हम दो अल्पमत सदस्यों द्वारा सन् 1987–88 में पेश तीन रिपोर्टों में सुप्रीम कोर्ट का ध्यान बार–बार स्वास्थ्य संबंधी व विषविज्ञानी रिकार्ड और मुआवजे के आपसी संबंध के बारे में आकर्षित किया गया है। अक्तूबर 1988 में इपीडिमियालॉजी अध्ययन, मेडिकल दस्तावेजीकरण, पेशाबीय थायोसायनेट, महिलाओं के प्रजनन अंगों को हुए नुकसान, फेफड़ों को पहुंची क्षति, घटी हुई कार्यक्षमता आदि मसलों से संबंधी आंकड़ों को वैज्ञानिक आधार पर पुनर्गठित करने की हमारी अनेक सिफारिशों पर सुनवाई हुई। याचिकाकर्ता की ओर से जनहित में सक्रिय जुझारू वकील सुश्री इंदिरा जयसिंग ने अल्पमत सिफारिशों के वैज्ञानिक आधारों की जोरदार पैरवी की। लेकिन भारत सरकार के महाधिवक्ता श्री पारासरन एवं आई.सी.एम.आर. व राज्य शासन के वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने इन सकारात्मक सुझावों का पूर्ण गैर–वैज्ञानिक ढंग से विरोध किया। यहां तक कि उन्होंने पीड़ितों के शरीर में टिके हुए जहरों पर कारगर शोध करने और उनके द्वारा होने वाली दीर्घकालीन बीमारियों को भी उजागर करने के लिए दिए गए तमाम सुझावों को यह कहकर झुठलाने की कोशिश की कि ये सुझाव गैर–शासकीय विशेषज्ञों ने दिए हैं जिनकी मंशा 'भारतीय विज्ञान की प्रतिष्ठा को गिराना' मात्र है। अक्तूबर 1988 के उन तीन दिनों में देश की सबसे ऊंची न्यायपालिका के सामने पीड़ितों के जीवन के हक और वैज्ञानिक मसलों पर हुई सारी कानूनी बहस सरकारी बनाम गैर–सरकारी दायरे में सिमटकर रह गई। इस जिरह के दौरान मुख्य न्यायाधीश श्री पाठक की अध्यक्षता में गठित यही संवैधानिक पीठ अल्पमत रिपोर्टों में प्रस्तुत तथ्यों के बावजूद एक भी आदेश पारित नहीं कर पाई। **इस प्रकार कोर्ट ने मेडिकल रिकार्ड व विषविज्ञानी आंकड़ों एवं मुआवजे के आकार के बीच कानूनी रिश्ता स्थापित करने का ऐतिहासिक मौका खो दिया।** निःसंदेह, 13

अक्तूबर 1988 को मुआवजे का वैज्ञानिक आधार मजबूत करने के प्रश्न पर कोर्ट ने अपना आदेश रोककर (या टालकर) इस मामले को सदा के लिए भोपाल मुकदमे के हाशिये में डाल दिया। भारत सरकार भी यही चाहती थी, इसके प्रमाण तो हमें सुप्रीम कोर्ट कमेटी की बैठकों के दौरान ही मिल गए थे। परंतु उस दिन भारत सरकार की राय मानकर कोर्ट ने जाने या अनजाने अगले साल 14 फरवरी 1989 के समझौते में बिना किसी तार्किक आधार के तय होनेवाली 47 करोड़ डालर की बहुराष्ट्रीय 'भीख' को कानूनी वैधता प्रदान करने का रास्ता साफ कर दिया।

मुआवजे का पूंजीवादी सिद्धांत

क्या यह मान लिया जाए कि मेडिकल रिकार्ड एवं आर्थिक व पर्यावरणीय क्षति के रिकार्ड न बन पाने के कारण ही सरकार को 47 करोड़ डालर की कार्बाइड द्वारा दी गई भीख स्वीकारने के लिए मजबूर होना पड़ा? आखिर, और क्या कारण होगा कि जिस सरकार ने सितंबर 1986 में भोपाल की अदालत में 330 करोड़ डालर या लगभग 50 अरब रुपए (दंडात्मक हर्जाना छोड़कर) के मुआवजे की मांग की, वही सरकार 14 फरवरी 1989 की दोपहर को उसके महज एक सातवें हिस्से या 14 प्रतिशत को स्वीकारने के लिए तैयार हो गई? 330 करोड़ डालर और 47 करोड़ डालर दोनों राशियां उसी सरकार की दृष्टि में गैस पीड़ितों के लिए पर्याप्त, न्यायोचित और तर्कसंगत कैसे हो सकती हैं? वैसे तो गैस पीड़ित संगठनों ने 330 करोड़ डालर के मूल सरकारी दावे को भी नाकाफी माना था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित एक नागरिक आयोग के अनुसार कम-से-कम 410 करोड़ डालर (लगभग 62 अरब रुपए) का हिसाब बनता है जिसमें दंडात्मक हर्जाना शामिल नहीं है।

तो फिर 47 करोड़ डालर की यह जादुई राशि निकली कहां से? यह राशि उसी सिद्धांत से निकली है जिस पर आज की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था खड़ी हुई है। यह वही सिद्धांत है जो इंसान की जिंदगी को कम और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आर्थिक सुरक्षा और मुनाफे को अधिक महत्व देता है। कार्बाइड के भूतपूर्व अध्यक्ष वारेन एंडरसन ने गैस हादसे के कुछ माह बाद ही अपने घबड़ाए हुए शेयर होल्डरों को सांत्वना देते हुए यह आश्वासन दिया था कि कंपनी भोपाल पीड़ितों को मुआवजे का भुगतान इस तरकीब से करेगी कि कंपनी की संपत्ति या मुनाफे और उनके शेयरों

की कीमतों पर कोई नकारात्मक असर नहीं पड़ेगा। कार्बाइड ने मार्च 1986 में अपनी बीमा कंपनी से प्राप्त 20 करोड़ डालर और बैंक कर्जों से उपलब्ध 15 करोड़ डालर जोड़कर 35 करोड़ डालर समझौते बतौर 'मानवीयता' के नाम पर देने की पेशकश की थी। तब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने इसे 'अपर्याप्त' कहकर ठुकरा दिया था। **लेकिन विडंबना तो यह है कि 47 करोड़ डालर की जिस राशि को अब भारत सरकार ने न्यायोचित व पर्याप्त कहकर स्वीकार लिया है वह मार्च 1986 में ठुकराई हुई 35 करोड़ डालर की राशि और उससे तीन वर्षो में प्राप्त चक्रवर्ती ब्याज का योग मात्र है। यानी, विगत तीन वर्षो में कार्बाइड अपनी पेशकश में एक इंच भी आगे नहीं बढ़ी, वहीं की वहीं है, जबकि भारत सरकार 330 करोड़ डालर से पीछे हटकर 47 करोड़ डालर तक आ गई है और दंडात्मक हर्जाने के सवाल को हमेशा के लिए ताक पर रखने को तैयार हो गई। अंततः हुआ वही जो दुनिया की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के हित में था। इस प्रकार एंडरसन साहब की भविष्यवाणी सही निकली, यानी कार्बाइड का बाल भी बांका नहीं हुआ।**

फैसले में गैस पीड़ितों की भागीदारी गायब

सरकार को यह भी जरूरी नहीं लगा कि जिन गैस पीड़ितों के हित में वह यह मुकदमा लड़ रही है उनसे एक बार पूछ तो लिया जाता। आधुनिक दुनिया में न्याय के इतिहास में शायद यह पहली मिसाल है जब असली शिकायतकर्ता से सलाह किए बगैर ही न्याय की इतिश्री कर दी गई। कहीं यह आरोप न लगे इसलिए 14 फरवरी 1989 के आदेश में 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा' नामक गैस पीड़ित संगठन व उसके द्वारा चलाए जा रहे 'जन स्वास्थ्य केंद्र' को भारत सरकार के समकक्ष एक पक्ष के रूप में दर्ज कर लिया गया। यह बात दीगर है कि इन दोनों संगठनों को न तो 14 फरवरी के दिन कुछ भी कहने का मौका दिया गया और न ही उसके पूर्व मुख्य न्यायाधीश के कक्ष में यूनियन कार्बाइड और भारत सरकार के वकीलों के बीच हुई गोपनीय बैठकों में शामिल किया गया। यह व्यवहार तो उस संगठन के साथ किया गया जिसके हस्तक्षेप पर भोपाल अदालत ने अंतरिम मुआवजे के आदेश दिए थे और जिसे हाईकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट में हस्तक्षेपकर्ता के रूप में स्वीकारा गया था। अभी अन्य गैस पीड़ित संगठनों की भागीदारी का तो सवाल ही नहीं उठा है। यदि मोर्चा

अभी भी सुप्रीम कोर्ट में जाकर यह कहे कि 14 फरवरी के आदेश में उसके नाम का उपयोग महज एक नाटक है, तो इस आदेश की वैधता ही खटाई में पड़ सकती है।

जन आलोचना और न्यायपालिका

तीन मार्च 1989 को सुप्रीम कोर्ट में एक अभूतपूर्व घटना घटी। उस दिन एक नई याचिका पर विचार हो रहा था जिसमें भोपाल गैस रिसन हादसा (दावों का निपटारा) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती दी गई थी और यह दलील पेश की गई थी कि भारत सरकार ने गैस पीड़ितों के हितों का प्रतिनिधित्व सही ढंग से नहीं किया है। अचानक पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ के एक सदस्य न्यायाधीश श्री ई. एस. वेंकटारमैय्या विचलित हो उठे। इस पीठ के फैसले के खिलाफ देशभर में हो रही व्यापक प्रतिक्रिया का जिक्र करते हुए उन्होंने भावाकुल होकर कहा *"मैं 14 व 15 फरवरी के आदेशों से अपने को अलग करना चाहूंगा।"* मुख्य न्यायाधीश श्री पाठक ने उनके हाथ को पकड़कर आगे कुछ कहने से रोका और अपनी ओर से जोड़ा कि हालांकि *"उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यही सबसे उत्तम फैसला होना चाहिए"* लेकिन *"यदि कोई गलती हो गई है तो हम उसे सुधारने के लिए सहर्ष तैयार हैं।"* न्याय के इतिहास में शायद यह कभी नहीं हुआ होगा कि जन आक्रोश के सामने न्यायपालिका इतनी विचलित हुई हो। इस फैसले का भविष्य क्या है, यह सवाल तो अब दायर की जा रही अनेक याचिकाओं के भविष्य और सरकार के रवैय्ये से जुड़ा हुआ है। लेकिन यह विचार तो किया ही जा सकता है कि यदि फैसला 14 फरवरी 1989 को भोजन के अवकाश तक हो रही बहस की स्थिति पर लौटा दिया जाए तो सुप्रीम कोर्ट के सामने न्याय के लिये क्या–क्या विकल्प उपलब्ध हैं।

फैसले की वापसी का विकल्प

सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट के सामने यह मामला महज इसलिए आया था चूंकि भारत सरकार और यूनियन कार्बाइड दोनों ने जबलपुर हाईकोर्ट द्वारा अंतरिम मुआवजे के मामले पर दिए गए फैसले के खिलाफ अपीलें की थी – यूनियन कार्बाइड ने इसलिए कि हाईकोर्ट ने भोपाल अदालत द्वारा प्रतिपादित अंतरिम मुआवजे के सिद्धांत को वैध माना था और भारत सरकार ने इसलिए कि हाईकोर्ट ने भोपाल

अदालत द्वारा घोषित 350 करोड़ रुपए के अंतरिम मुआवजे को घटाकर 250 करोड़ रुपए कर दिया था। इस सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट के सामने यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन के कानूनी दायित्व का प्रश्न आया था। यूनियन कार्बाइड ने दलील दी थी कि गैस रिसन का कारण उसके किसी कर्मचारी द्वारा की गई तोड़फोड़ है, न कि कंपनी की लापरवाही या सुरक्षा उपायों में कमी। दूसरी ओर कंपनी का कहना था कि वह अपनी मातहत भारतीय कंपनी यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के कृत्यों के लिए जिम्मेदार नहीं है। भारत सरकार ने इन दोनों दलीलों के खिलाफ ढेरों तर्क, सबूत एवं विभिन्न देशों के कानूनों की मिसालें पेश की थीं। सुप्रीम कोर्ट से अपेक्षा यह है कि वह कानून के इस जटिल पहलू पर अपनी राय जाहिर करे। हाईकोर्ट के फैसले ने यूनियन कार्बाइड को कानूनी रूप से जिम्मेदार मानने के लिए भूतपूर्व न्यायाधीश श्री पी. एन. भगवती द्वारा दिल्ली के 'श्रीराम ओलियम रिसन प्रकरण' में प्रतिपादित सिद्धांत को अपना आधार बनाया था। उक्त फैसले के अनुसार कोई भी कंपनी उसके द्वारा मानवीय जीवन को हुए नुकसान के लिए पूर्णतः जिम्मेदार है, चाहे उस हादसे के पीछे कोई भी कारण हों। यह फैसला लापरवाह उद्योग धंधों पर नियंत्रण करने के लिए भारतीय कानून में भी एक ऐतिहासिक आधार देता है। सुप्रीम कोर्ट का यह कर्तव्य है कि वह मार्गदर्शन दे कि यूनियन कार्बाइड के मामले में 'संपूर्ण और निःशर्त दायित्व' का यह सिद्धांत लागू किया जा सकता है या नहीं। इसी प्रकार मातहत भारतीय कंपनी के कृत्यों के लिए बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेट पर्दे के पीछे काम करनेवाली यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है या नहीं, इस पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले का इंतजार तीसरी दुनिया कर रही है। यह बेहतर ही होगा कि जनआलोचना से विचलित न्यायाधीश श्री वेंकटारमैय्या द्वारा दिए गए संकेत के अनुसार फैसले को 14 फरवरी के पूर्वान्ह की स्थिति पर लौटा दिया जाए।

भारतीय फैसला और अमरीकी अदालत

कार्बाइड की पक्षधर लॉबी ने यह भी डर फैलाया है कि यदि सुप्रीम कोर्ट ने अंतरिम मुआवजे का आदेश दिया तो उससे बचने के लिए यूनियन कार्बाइड अमरीकी अदालत की शरण लेगी। यह एक मिथ्यापूर्ण प्रचार है। इस आशंका का आधार क्या

है कि अमरीकी अदालत में भारतीय फैसले को क्रियान्वित करवाने के लिए कानूनी समर्थन नहीं मिलेगा। आखिरकार, इस फैसले को चुनौती देने के लिए यूनियन कार्बाइड को प्रमाणित करना होगा कि भारतीय अदालतों में न्यायिक प्रक्रिया का उल्लंघन हुआ है। इस दलील में यूनियन कार्बाइड को तभी सफलता मिल सकती है जब वह यह सिद्ध कर सके कि सुप्रीम कोर्ट का फैसला किसी धोखे या प्रपंच पर आधारित है। क्या यह संभव है कि भारत सरकार ने यूनियन कार्बाइड की इस भपकी से घबड़ाकर ही अंतरिम मुआवजे के फैसले के लिए जोर नहीं दिया? हाईकोर्ट के फैसले में न्यायाधीश श्री सेठ ने न्यूयार्क की अदालत के नियम और वहां हुए अन्य फैसलों का विश्लेषण करके यह मत पेश किया है कि यदि यूनियन कार्बाइड को भारत में निष्पक्ष सुनवाई व उचित न्यायिक प्रक्रिया का अवसर दिया गया है तो भारतीय फैसले को न्यूयार्क अदालत भी बाध्यकारी मानेगी। क्या सुप्रीम कोर्ट को भारतीय न्यायिक प्रक्रिया की वैधता व औचित्य पर इतना भी भरोसा नहीं है? कुछ भी हो, इस न्यायिक चुनौती को स्वीकारने के लिए सुप्रीम कोर्ट को अपना मानस बनाना ही पड़ेगा क्योंकि इसके परिणाम बहुराष्ट्रीय अर्थतंत्र की गरीब देशों में पूंजी निवेश की नीतियों पर व्यापक असर डाल सकते हैं।

'मानवीयता' व 'दया' की भाषा

इस फैसले के पक्ष में यह तर्क भी अक्सर दिया जाता है कि उन 'बेचारे', 'असहाय' और 'अभागे' गैस पीड़ितों के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनी को दंडित करने व कानूनी मिसाल स्थापित करने का कोई महत्व नहीं है चूंकि उनका सरोकार मात्र तुरंत राहत मिलने से है। गैस पीड़ितों के बारे में इस तरह की भाषा का उपयोग करना कार्बाइड की रणनीति का ही अंग है, ताकि वह अपने कानूनी दायित्व के प्रश्न और पूरा मुआवजा देने से बच सके। ऐसी भाषा में निहित दलील का पर्याप्त उत्तर तो इस बात से मिल जाता है कि फैसले के अगले दिन से ही गैस पीड़ित स्वंय फैसले को रद्द करने और दोषी कार्बाइड को दंडित करने की मांग को लेकर विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं, धरने पर बैठ रहे हैं और गिरफ्तारियां दे रहे हैं। 'भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन' की अगुवाई में 22 फरवरी 1989 को लगभग दो हजार गैस पीड़ित महिलाओं ने दिल्ली की सड़कों पर जुलूस निकालकर और 9 मार्च को हजारों लागों

ने भोपाल में लाठियां खाकर व गिरफ्तारियां देकर दया दिखाने वाली इस भ्रामक भाषा को खुली चुनौती दी है।

राष्ट्रवादी और मानवतावादी नजरिए

हाल ही में एक प्रतिष्ठित पूर्व न्यायाधीश ने इस भाषा को विचारधारा का जामा पहना दिया है। उनके अनुसार इस मुकदमे को देखने के दो नजरिए हैं – एक राष्ट्रवादी और दूसरा मानवतावादी। राष्ट्रवादी नजरिए के अनुसार कार्बाइड जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनी को दंडित करना प्राथमिकता है, चाहे उसके चलते मुआवजा दिलवाने में देरी ही क्यों न हो जाए। मानवतावादी नजरिए के अनुसार प्राथमिकता केवल मुआवजा दिलवाने की है ताकि गैस पीड़ितों को तुरंत राहत पहुंचे। इन दोनों नजरियों को इस प्रतिष्ठित अवकाश–प्राप्त न्यायाधीश ने परस्पर विरोधाभासी रास्तों के रूप में पेश करके अनचाहे और अनजाने ही कार्बाइड के खेल को मदद दी है। दरअसल, गैस पीड़ितों के हित की दृष्टि से ये दोनों नजरिए एक ही हैं। सुप्रीम कोर्ट ने भी 14 फरवरी 1989 के फैसले की भूमिका में 'हादसे के पीड़ितों को तात्कालिक व पर्याप्त राहत पहुंचाने की प्राथमिकता' के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। यदि यह सच है तो फिर यह समझ में नहीं आता कि सुप्रीम कोर्ट ने 'भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन' की याचिका पर अक्तूबर 1988 में आदेश क्यों नहीं पारित किए। उस याचिका में यह मांग की गई थी कि जब तक कार्बाइड से मुआवजा नहीं मिलता तब तक संविधान की धारा 21 के तहत भारत सरकार से पांच सौ रुपए प्रति परिवार प्रतिमाह का गुजारा भत्ता तुरंत दिलवाया जाए। यह एक स्वाभाविक सवाल है कि गैस पीड़ितों को तुरंत राहत दिलवाने के लिए चिंतित सुप्रीम कोर्ट ने इस याचिका पर 13 अक्तूबर 1988 के दिन आदेश पारित करने से इंकार क्यों किया?

यदि सुप्रीम कोर्ट को किसी कारण से कार्बाइड को अंतरिम मुआवजा देने का आदेश देना कानूनी दृष्टि से उचित नहीं लग रहा था तो उसके पास न्यायिक प्रक्रिया के तहत एक स्वाभाविक विकल्प था। सुप्रीम कोर्ट कार्बाइड के कानूनी दायित्व व अंतरिम मुआवजे के प्रश्न पर जबलपुर हाईकोर्ट द्वारा दिए गए फैसले पर अपनी राय देकर भोपाल जिला अदालत को निर्देशित कर सकता था कि मुकदमे की शेष कार्यवाही इस राय को दृष्टि में रखकर तेजी से पूरी की जाए। इस बीच भारत सरकार 250 या

350 करोड़ रुपए की अंतरिम राहत अपनी ओर से दे सकती थी। इसके लिए आवश्यक स्रोत उसी प्रकार से जुटाए जा सकते थे जैसे बांग्लादेश से आए शरणार्थियों के लिए डाक अधिभार लगाकर या सूखे से निपटने के लिए गतवर्ष आयकर पर अधिभार लगाकर जुटाए गए थे। न्याय का यह स्वाभाविक रास्ता न अपनाकर भारत सरकार ने कार्बाइड के साथ यह शर्मनाक समझौता करना उचित क्यों समझा? सवाल सरकार के पास अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी पूरा करने के लिए अंतरिम राहत हेतु पर्याप्त स्रोत होने या न होने का नहीं है। **सवाल यह है कि क्या हम भोपाल गैस कांड को बांग्लादेशी शरणार्थी समस्या या सूखे जैसी राष्ट्रीय चुनौती मानते हैं या इसे किसी दान–दक्षिणा वाले काम के रूप में देखते हैं जिसे कार्बाइड की 'मानवीयता' और 'दया' के मिथक पर छोड़ा जा सकता है।**

इसी प्रकार तात्कालिक राहत पहुंचाने का एक और मौका सुप्रीम कोर्ट को जन स्वास्थ्य केंद्र के डॉ. निशिथ वोरा एवं दो गैस पीड़ितों द्वारा दायर याचिका में मिला था। इस याचिका के तहत सुप्रीम कोर्ट विशेषज्ञ समिति के हम दो अल्पमत सदस्यों ने अपनी रिपोर्टों में विस्तृत प्रमाण देकर स्थापित किया था कि भोपाल में इलाज, राहत व पुनर्वास, मेडिकल दस्तावेजीकरण और वैज्ञानिक शोध का काम शुरू से ही लापरवाही, गैर–वैज्ञानिकता और दिशाहीनता के दलदल में फंसा हुआ है। यदि कार्बाइड से कम या ज्यादा मुआवजा लेकर पीड़ितों में बांट भी दिया जाए तो उससे उनके इलाज, पुनर्वास या शोध की समस्या कैसे हल हो पाएगी? आखिर, गैस पीड़ित मुआवजा लेकर अपना इलाज कैसे करवाएंगे जबकि 'मिक' व अन्य जहरीले रसायनों से होने वाली बीमारियों का इलाज ढूंढने के लिए वैज्ञानिक शोध का सही कार्यक्रम न तो कार्बाइड ने उठाया है और न ही भारत सरकार ने? अधिक–से–अधिक यही तो होगा कि जिस प्रकार आज सरकारी अस्पतालों में लाक्षणिक (केवल लक्षण–आधारित) इलाज चल रहा है, उसी प्रकार मुआवजा मिल जाने पर भी वही प्रभावहीन व निरर्थक इलाज गैस पीड़ित महंगे प्रायवेट अस्पतालों या दवाखानों में करवाएंगे। ये सब तथ्य हमने अपनी तीन अल्पमत रिपोर्टों के जरिए सुप्रीम कोर्ट के सामने अनेक सटीक सिफारिशों के साथ सन् 1987–88 के दौरान रखे थे। अंतिम अल्पमत रिपोर्ट में यह भी सिफारिश की गई थी कि भोपाल में पीड़ितों के लिए चल रहे तमाम कार्यक्रमों को पुनर्गठित करने हेतु सुप्रीम कोर्ट अपने तत्वावधान में एक उच्च–स्तरीय 'भोपाल गैस

पीड़ित राष्ट्रीय मेडिकल एवं पुनर्वास आयोग' गठित करे जिसकी अध्यक्षता सुप्रीम कोर्ट के किसी अवकाश–प्राप्त या वर्तमान न्यायाधीश को सौंपी जाए। आयोग की अध्यक्षता के लिए न्यायमूर्ति श्री वी. आर. कृष्णा अय्यर या न्यायमूर्ति श्री पी. एन. भगवती का नाम और सदस्यता के लिए बाबा आमटे जैसे प्रतिष्ठित समाजकर्मियों व मेगसासे पुरस्कार–प्राप्त डॉ. पी. के. सेठी जैसे पुनर्वास विशेषज्ञों के नाम प्रस्तावित किए गए थे। याचिकाकर्ता की ओर से वकील सुश्री इंदिरा जयसिंग ने इस आयोग की स्थापना की तात्कालिक जरूरत का समुचित आधार अदालत के सामने पेश कर दिया था। इसके बावजूद पीड़ितों को राहत देने के लिए इस आवश्यक कदम पर भी सुप्रीम कोर्ट ने 13 अक्तूबर 1988 की सुनवाई के बाद से अजीबोगरीब चुप्पी साध ली है।

न्याय का एक ही नजरिया

देश की सबसे बड़ी अदालत से न्याय की गुहार करते हुए गैस पीड़ितों को उम्मीद है कि उपरोक्त दोनों याचिकाओं के तहत कोर्ट गुजारा भत्ता देने एवं राष्ट्रीय आयोग गठित करने की मांग को तुरंत पूरा करेगा और साथ–साथ कार्बाइड से अंतरिम मुआवजा दिलाने की न्यायिक प्रक्रिया को पूरा करने के लिए निर्देश देगा। यदि इतना संभव हो जाता है तो कार्बाइड के खिलाफ भोपाल की दीवानी और फौजदारी अदालतों में चल रहे मुकदमे दोबारा जीवित किए जा सकेंगे। तभी यह भी संभव होगा कि कार्बाइड के खिलाफ शुरू की गई न्यायिक प्रक्रिया को अपनी परिणति तक पहुंचाने के साथ–साथ पीड़ितों को तात्कालिक राहत भी मिल सकेगी। यही एकमात्र विकल्प है जिससे गैस पीड़ितों को समुचित राहत देने और अपराधी कार्बाइड को दंडित करके तीसरी दुनिया के सामने कानूनी मिसाल स्थापित करने की मांगों के प्रति एक साथ न्याय किया जा सकता है। **निःसंदेह, राष्ट्रवादी और मानवतावादी नजरियों को एक करके ही भारत का सुप्रीम कोर्ट, यूनियन कार्बाइड और उसके पीछे खड़े ताकतवर पूंजीवादी व साम्राज्यवादी अर्थतंत्र की मुनाफाखोर एवं प्राकृतिक संसाधनों की लूट पर टिकी इंसानियत को नकारनेवाली नीतियों का सटीक जवाब दे सकता है।**

सुप्रीम कोर्ट के 14–15 फरवरी 1989 के उक्त फैसले से भारत तीसरी दुनिया के सामने शर्मसार हुआ। सारे देश का लोकतांत्रिक और जनवादी अंतर्मन आहत हुआ। अगले कुछ सप्ताहों में देश भर में फैसले की भर्त्सना हुई। गैस पीड़ित महिलाओं ने सुप्रीम कोर्ट के बाहर खड़े होकर खुलकर फैसले को कॉरपोरेट पूंजी के सामने आत्मसमर्पण घोषित किया। भोपाल में विरोध करते हुए गैस पीड़ितों पर लाठी चार्ज हुआ और उन्होंने गिरफ्तारियां दीं। अप्रैल 1989 में भोपाल में फैसले पर विचार करने के लिए जन सम्मेलन हुआ जिसमें कई न्यायविद् और बुद्धिजीवी शामिल हुए। सम्मेलन में फैसले के खिलाफ संकल्प पारित हुआ। अखबारों ने भी हिम्मत करके तीखे संपादकीय लिखे।

इस अभूतपूर्व विरोध के आगे सुप्रीम कोर्ट को झुकना पड़ा। अक्तूबर 1991 में फैसले पर पुनर्विचार हुआ। अंततः यूनियन कार्बाइड के खिलाफ भोपाल अदालत में दायर अपराधिक प्रकरण पुनर्स्थापित हुए। वे आज भी चल रहे हैं। गैस पीड़ितों के लिए 500 बिस्तर का अस्पताल शुरू करने के आदेश हुए। लेकिन इसके अलावा उक्त फैसले का बुनियादी जनविरोधी चरित्र बरकरार रहा। इसीलिए कॉरपोरेट पूंजी की लूट के खिलाफ भोपाल की लड़ाई आज भी ज़िंदा है!

उक्त फैसले के बाद भारत सरकार ने तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री पाठक को दी हेग में स्थित अंतर्राष्ट्रीय कोर्ट में मनोनीत कर दिया!

आज अगर खामोश रहे, तो कल सन्नाटा छाएगा,
हर बस्ती में आग लगेगी, हर बस्ती जल जायेगी,
सन्नाटे के पीछे से बस एक सदा ही आएगी,
कोई नहीं है, कोई नहीं है,
कोई नहीं है, कोई नहीं!

साहिर लुधियानवी

चित्रः केथ कोल्विट्ज

वैश्वीकरण और भोपाल के मायने

हमने ऊपर जो कहानी दर्ज की है उससे यह सवाल उठता है कि भारतीय राज्य को कॉरपोरेट पूंजी के साथ सांठगांठ करने की जरूरत क्यों पड़ी। इस सवाल का जवाब उस ऐतिहासिक दौर में तलाशना होगा जब यह हादसा हुआ। उस समय वैश्विक पूंजीवाद संकट के नए दौर से गुजर रहा था। एक ओर, यह संकट सिकुड़ते हुए बाजार का था तो दूसरी ओर, घटते हुए प्राकृतिक संसाधनों का। इस संकट से उबरने के लिए वैश्विक पूंजीवाद ने वैश्वीकरण का रास्ता चुना। इसके तहत वैश्विक पूंजी और बाजार को हरेक मुल्क में बेलगाम पहुंच देने के लिए जो नीतियां आगे बढ़ाई गईं उन्हें आज हम नवउदारवादी नीतियों के रूप में जानते हैं। वैश्वीकरण के इस दौर का तजुर्बा तो 1970 और 1980 के दशकों में लातीनी अमरीका और अफ्रीका के मुल्कों ने कर लिया था। उन मुल्कों की जनता ने लोकतंत्र की जगह तानाशाही स्थापित होते, अपने प्राकृतिक संसाधनों को लुटते हुए और अर्थव्यवस्था को जर्जर बनते देखा था। इसका व्यापक जन प्रतिरोध भी हुआ। वैश्विक पूंजीवाद की वही नीतियां 1980 के दशक के मध्य में भारत पर भी असर डालने लगी थीं। दुनिया की पूंजी और बाजार के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था के दरवाजे निर्बाध खोलने के लिए तैयारियां जोर पकड़ रही थीं। जब देश वैश्वीकरण के मुहाने पर खड़ा था तब भोपाल हादसा हुआ।

भारत के सामने दो विकल्प थे। एक वह विकल्प था जो भारतीय राज्य ने चुना। यूनियन कार्बाइड के साथ सांठगांठ करके और उसको नष्ट होने से बचाने के कदम उठाकर भारत सरकार ने वैश्विक पूंजी को यह संदेश दिया कि उनके पूंजी निवेश और उसके जरिए की जानेवाली मुनाफाखोरी, लूट और शोषण के लिए भारत की अर्थव्यवस्था सुरक्षित है। निःसंदेह, यदि हमारी सरकार उस समय यूनियन कार्बाइड को भोपाल नरसंहार की विधिवत सजा देने का फैसला करती तो वैश्वीकरण की जो घोषणा सन् 1991 में की गई वह मुमकिन नहीं होती।

दूसरा वह विकल्प था जो भारतीय राज्य ने नहीं चुना। लेकिन यह विकल्प भोपाल हादसे का मुख्य सबक था। आखिरकार, भोपाल में जहरीले रसायनों पर आधारित कीटनाशक दवाई बनाने का कारखाना क्यों खोला गया? 1960 के दशक से भारतीय खेती में तथाकथित हरित क्रांति का जो मॉडल लागू किया गया उसके तहत खेती पूरी तरीके से रासायनिक उत्पादों, बिजली और बाहरी तकनीक पर निर्भर हो गई। इसी के चलते खेती की अर्थव्यवस्था तेल और पेट्रोलियम के उत्पादन में लगी पूंजी से भी जुड़ गई। शुरू में खेती का उत्पादन जरूर बढ़ा लेकिन बढ़ते क्रम में धरती की उर्वरता कम होती गई। जिस मुनाफे से किसानों की आंखें चकाचौंध हुईं थीं वह भी घटता गया। देश के कई अंचलों में, जो उपजाऊ खेती के लिए जाने जाते थे, वहां बड़ी तादाद में किसान कर्ज में डूब गए और आत्महत्या करने के लिए मजबूर हुए।

इसी तरह के सवाल देश की पूरी उत्पादन प्रणाली और उसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दिशा को लेकर उठ रहे हैं। आज से सौ साल पहले महात्मा गांधी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भारत पर हो रहे असर को देखकर अपने सरोकार 'हिंद स्वराज' में व्यक्त किए थे। लेकिन पूंजीवाद के उस दौर में हमने 'हिंद स्वराज' में उठाए गए सवालों को भी अनदेखा कर दिया। आज दुनिया का पूंजीवाद भी उन्हीं सवालों से जूझ रहा है। बेतहाशा बढ़ते हुए उपभोक्तावाद ने जलवायु परिवर्तन को वैश्विक राजनीति का केंद्रीय मुद्दा बना दिया है। पिछले कुछ सालों से पूंजीवाद आर्थिक महामंदी की गिरफ्त में है। लेकिन इस संकट का समाधान पूंजीवाद के दायरे में ही खोजने की कोशिश रहती है। भोपाल का हादसा हमें मजबूर कर रहा है यह सोचने के लिए कि पूंजीवाद और उससे जुड़ी हुई साम्राज्यवादी व्यवस्था के दायरे से बाहर निकलकर क्या कोई अन्य विकल्प भी हो सकता है। यदि समाजवाद के बीसवीं सदी के अनुभव में खामियां रह गईं थीं तो क्या समाजवाद का कोई नया खाका बनाने की जरूरत है जिसमें विनाशकारी औद्योगिकीकरण और विकृत विकास से जूझना संभव होगा। यही सबक है भोपाल हादसे का कि हम समय रहते इंसान, समाज और विकास के नए समीकरणों को गढ़ने के लिए एकजुट होकर अपनी लड़ाई को नई दिशा दें।

उपसंहार : भोपाल से कोपनहेगन तक

भोपाल गैस कांड की 25वीं बरसी के एक हफ़्ते बाद कोपनहेगन सम्मेलन होगा जहां दुनियाभर के मुल्क – अमीर और गरीब मुल्क – मिलकर विचार करेंगे कि जलवायु परिवर्तन की चुनौती से कैसे जूझा जाए। इसका भोपाल हादसे से क्या लेना–देना है? यूनियन कार्बाइड ने खतरनाक रसायनों वाला कारखाना भारत में इसीलिए खोला चूंकि यहां के सस्ते श्रम और ऐसे उद्योगों पर नियंत्रण के लिए ढुलमुल तंत्र मुनाफे की गुंजाइश बढ़ा देते हैं। भारत में इंसान की कीमत भी अमरीका और यूरोप के अमीर मुल्कों की तुलना में कहीं अधिक सस्ती है। अंततः मुआवजे के सवाल पर इन्हीं कारणों से यूनियन कार्बाइड बच गई। इस दौर में वैश्विक पूंजीवाद यूनियन कार्बाइड के साथ खड़ा था, न कि भोपाल की जनता के साथ। केवल यही नहीं, भारत के पूंजीपतियों ने भी अपना हित वैश्विक पूंजी के साथ ही जोड़ा। भारत के प्रधानमंत्री और अमरीका के राष्ट्रपति से वरद्‌हस्त इंडो–यू.एस. सी.ई.ओ. फ़ोरम के सह–अध्यक्ष श्री रतन टाटा हैं। इस फ़ोरम ने मार्च 2006 में फैसला लिया कि भोपाल नरसंहार की रंचमात्र जवाबदेही भी यूनियन कार्बाइड की नई मालिक डाऊ केमिकल पर नहीं आनी चाहिए – न भोपाल की जहरयुक्त मिट्टी–पानी की सफाई की, न कारखाने का रासायनिक कचरा उठाने की। अतः श्री रतन टाटा ने फ़ोरम की ओर से चुनींदा केंद्रीय मंत्रियों एवं योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री मोंटेक सिंह आहलूवालिया को इस आशय के पत्र लिखे।

कोपनहेगन सम्मेलन में भी जलवायु परिवर्तन के सवाल पर अमीर मुल्कों के द्वारा गरीब मुल्कों की अर्थव्यवस्था और विकास की दिशा पर अपना शिकंजा इस तरह कसा जाएगा कि वहां पूंजीवादी लूट और शोषण पूर्ववत संभव रहे। लेकिन लातीनी अमरीकी मुल्क बोलिविया के राष्ट्रपति ने कहा है कि गरीब मुल्कों का अमीर मुल्कों पर सदियों से चढ़ रहा 'ऐतिहासिक जलवायु कर्ज' है जो वापस होना चाहिए। हमें बोलिविया की आवाज़ सुनने की जरूरत है। भोपाल हादसे का भी वैश्विक पूंजी पर 25 साल से चढ़ रहा 'ऐतिहासिक पर्यावरण कर्ज' है जिसे चक्रवर्ती ब्याज सहित वापस लेने का हम संकल्प लें। यही रिश्ता है भोपाल का कोपनहेगन से।

———————

नफ़स–नफ़स कदम–कदम

– शलभ श्रीराम सिंह

नफ़स–नफ़स, कदम–कदम, बस एक फिक्र दम–ब–दम

घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिए!
जवाब दर सवाल है कि इंकलाब चाहिए!
इंकलाब–ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद–इंकलाब!

जहां अवाम के खिलाफ साजिशें हों शान से
जहां पे बेगुनाह हाथ धो रहे हों जान से
जहां पे लफ़्जे–अमन एक खौफ़नाक राज़ हो
जहां कबूतरों का सरपरस्त एक बाज हो
वहां न चुप रहेंगे हम, कहेंगे हम, कहेंगे हम
हमारा हक! हमारा हक! हमें जनाब चाहिए!
घिरे हैं हम सवाल . . . . . .
इंकलाब–ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद–इंकलाब!

यकीन आंख मूंदकर किया था जिन पर जान कर
वही हमारी राह में खड़े हैं सीना तानकर
उन्हीं की सरहदों में कैद हैं हमारी बोलियां
वही हमारे थाल में परस रहे हैं गोलियां
जो इनका भेद खोल दे, हरेक बात बोल दे
हमारे हाथ में वही खुली किताब चाहिए!
घिरे हैं हम सवाल . . . . . .
इंकलाब–ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद–इंकलाब! . . .

तस्सलियों के इतने साल बाद अपने हाल पर
निगाह डाल, सोच और सोचकर सवाल कर
किधर गए वो वायदे? सुखों के ख्वाब क्या हुए?
तुझे था जिनका इंतज़ार वो जवाब क्या हुए?
तू इनकी झूठी बात पर न और एतबार कर
कि तूझको सांस–सांस का सही हिसाब चाहिए!
घिरे हैं हम सवाल . . . . . .
इंकलाब–ज़िंदाबाद! ज़िंदाबाद–इंकलाब!

(यह गीत 'जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा' के साथियों द्वारा भोपाल की सड़कों पर किए गए 'दास्तान–ए–गैस कांड' और 'समर शेष है' नामक दो नुक्कड़ नाटकों के साथ गाया गया जिनके 60 से अधिक प्रदर्शन हुए। बाद में मोर्चे की टीम इस गीत और दोनों नुक्कड़ नाटकों के साथ देश के कई शहरों में घूमी।)

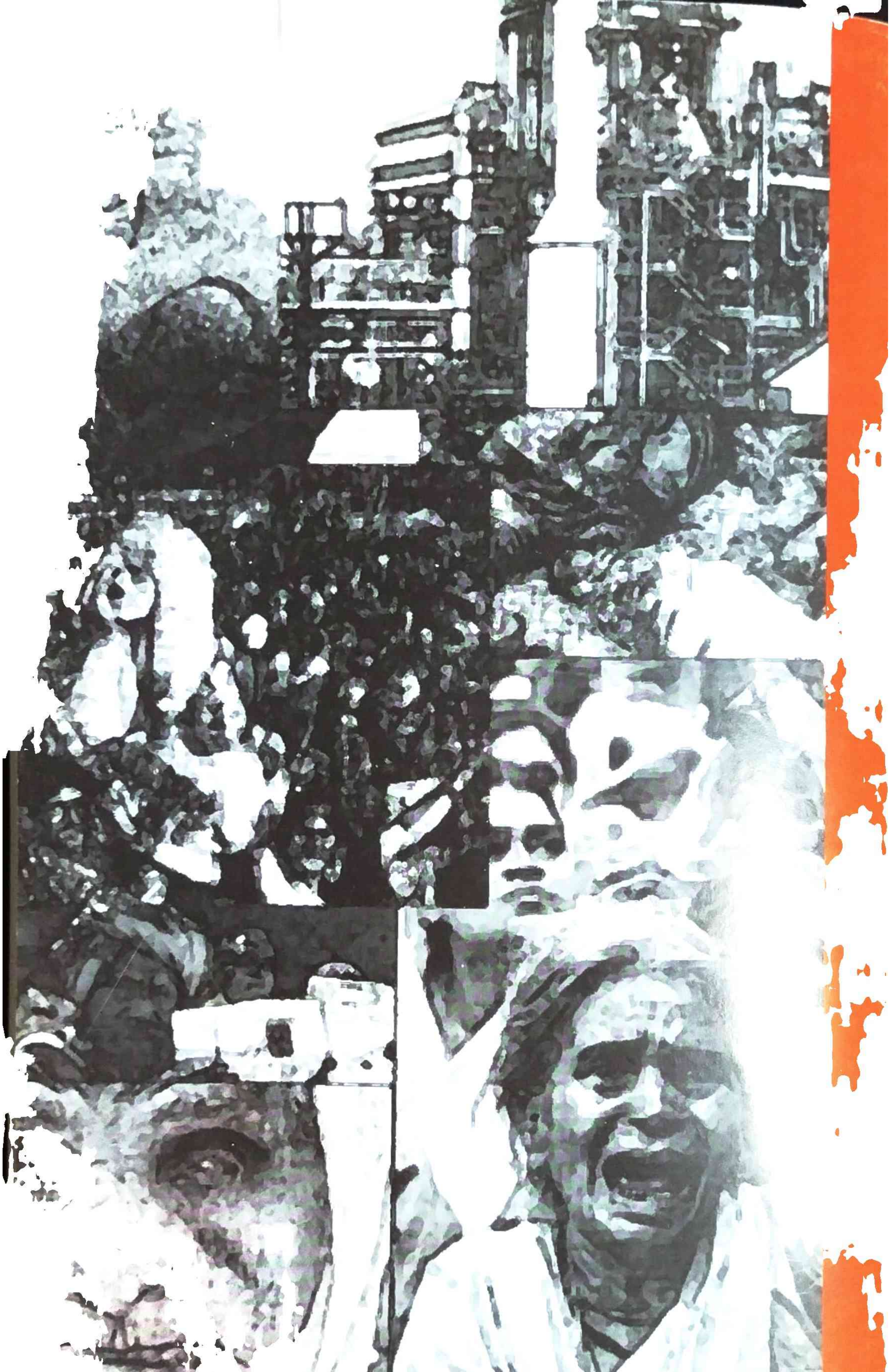

सहयोग राशि - ₹ 15/-